हमारे काव्यकार

प्राचीन और नवीन कवियों पर समीक्षा

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक

श्री व्यथितहृदय

लेक्चरर

हिन्दू महिला विद्यालय इन्टर कॉलेज, प्रयाग

Specimen Copy 1954

रामप्रसाद एन्ड सन्स

आगरा

प्रकाशक
रामप्रसाद एन्ड सन्स,
अस्पताल रोड
आगरा





नवम्बर १६५४

मूल्य २॥)

मुद्रक
राकेशचन्द्र उपाध्याय
आगरा पॉपूलर प्रेस
मोती कटरा, आगरा

भूमिका

'हमारे काव्यकार' आपके समक्ष है। यह एक आलोचनात्मक प्रयास है, जो मुख्य रूप से उच्च कक्षा के विद्यार्थियो के हित को ही समक्ष रखकर पूर्ण किया गया है। हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारा यह प्रयास नवीन नही है; क्योंकि इस प्रकार के प्रयास, जो गौरवपूर्ण हैं, अन्यान्य साहित्य-मर्मज्ञो के द्वारा हो चुके है; फिर भी हम यह निवेदन करेंगे कि हमारे इस प्रयास मे उपयोगिता है। कई वर्षों के निरन्तर अध्यापन के कारण हमने यह अनुभव किया है कि प्राचीन और नवीन कवियों तथा उनकी कविता के सम्बन्ध मे आलोचनात्मक ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को अधिक कठिनाइयाँ प्रतीत होती हैं। जो पुस्तकें सामने है वे इतनी जटिल है कि उनसे समुचित लाभ उठाने से विद्यार्थी वचित रह जाते हैं। हमने अपनी पुस्तक को जटिलता के दोष से दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया है। हमने यह चेष्टा की है कि कवियो की आलोचना का सरल से सरल चित्र विद्यार्थियों के सम्मुख उपस्थित हो सके। सरलता ही इस पुस्तक की उपयोगिता है। यदि विद्यार्थी समुदाय को इससे आशा के अनुरूप ही लाभ पहुँचा तो हम समझेंगे कि हमारा प्रयत्न पूर्ण हुआ।

आशा है, विद्यार्थी और अध्यापक समुदाय मे इसका उचित समादर ही होगा।

श्रमिक निवास
२३२ ए, कटरा, प्रयाग
७ अक्टूबर, १९५४

विनीत
श्री व्यथितहृदय

विषय-सूची

हमारे काव्यकार

१ कबीर

जन्म संवत् १४५५
मृत्यु संवत् १५७५

परिचय—कबीर का जन्म कब हुआ, इस सम्बन्ध मे विद्वानो और आचार्यों के विभिन्न मत है। 'कबीर चरित्र-बोध' के मतानुसार कबीर का जन्म सम्वत् १४५५, ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को हुआ था। इस सम्बन्ध मे कबीर-पंथियों में एक दोहा प्रचलित है —

चौदहसौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाढ भये।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भये।

कबीरदास जी का जन्म कहाँ हुआ, इस सम्बन्ध मे लोगो मे मतभेद है। कबीरपंथियो के विश्वास के अनुसार कबीरदास जी ज्योति स्वरूप थे और वे लहरतारा के कमल-पत्र पर अवतीर्ण हुए थे। इसी प्रकार उनके जन्म के सबन्ध मे यह भी किंवदंती कही जाती है कि उनका जन्म स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद के परिणाम स्वरूप एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने समाज के अपवाद के भय से नवजात कबीर को लहरतारा तालाब के निकट फेक दिया था। नीरू नामक जुलाहा, जो अपनी स्त्री नीमा के साथ उस मार्ग से कहीं जा रहा था, नवजात कबीर को उठाकर अपने घर ले गया और उसका पालन किया। कुछ लोग कबीर का जन्मस्थान मगहर बताते है और कहते हैं कि उनका जन्म एक मुसलिम योगी कुटुम्ब मे हुआ था।

कबीर के कुटुम्ब मे उनका पिता नीरू और उनकी माता नीमा थी। बडे होने पर कबीर का विवाह भी हो गया था। कबीर की स्त्री का नाम लोई था। कुछ लोगो का कथन है कि कबीर की एक और स्त्री थी जिसका नाम रामजनियाँ था। कबीर को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम कमाल था।

उनके एक पुत्री भी थी जिसे कमाली कहते थे। कुछ विद्वानो का कथन है कि कबीर की ही भाँति उसका पुत्र कमाल भी भावुक और कवि था।

कबीर जिस वंश मे उत्पन्न हुए थे, वह बहुत ही साधारण वंश था। कपडा बुनना और सूत कातना ही उसका काम था। इसलिए कबीर की शिक्षा-दीक्षा कुछ भी न हुई। पर कबीर की वाणियो और उनकी साखियो से यह ज्ञात होता है कि उनके भीतर प्रकांड ज्ञान की ज्योति थी और वे सस्कृत तथा अरबी-फारसी के शब्दो से परिचित थे।

कबीर के हृदय मे बाल्यावस्था मे ही भक्ति के अकुर अंकुरित हो उठे थे। वे बडे भावुक और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। साधु-सतो के साथ रहना और उनके उपदेशो से लाभ उठाना ही उनका मुख्य काम था। हिन्दू धर्म के प्रति बालकपन ही मे उनके हृदय में निष्ठा थी। बडे होने पर इसी निष्ठा के परिणाम स्वरूप उन्होने काशी मे स्वामी रामानन्द की शिष्यता स्वीकार की थी।

कबीर के हृदय मे अलौकिक ज्ञान की ज्योति थी। उनकी वाणियो और साखियो मे वेदो तथा शास्त्रो का निष्कर्ष मिलता है। उनके कई पदो में यौगिक क्रियाओ का निरूपण बडी सुन्दरता के साथ किया गया है। उन्होने ईश्वर, ब्रह्म और जीव पर एक प्रकांड दार्शनिक की भाँति विचार प्रगट किया है। कबीर का यह ज्ञान स्वयंभूत था। यही कारण है कि उसमे एक प्रकार का तथ्य और अलौकिकता दृष्टिगोचर होती है।

कबीर बहुत बडे पर्यटक थे। वे अवसर प्राप्त होने पर प्रायः तीर्थस्थानो की यात्राएँ किया करते थे और हिन्दू साधु तथा मुसलमान फकीरो के सत्संग का लाभ उठाया करते थे। इस सतसंग से कबीर को बहुत बडा लाभ हुआ। एक तो उन्हे भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषाओ के शब्दो का ज्ञान हुआ और दूसरे उनके हृदय मे जो प्राकृतिक ज्ञान की ज्योति थी उसे विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। कहना न होगा कि कबीर को हिन्दू शास्त्रों और मुसलमानों के धर्मग्रन्थो का ज्ञान साधुओ और फकीरो के सतसंग से ही प्राप्त हुआ था।

कबीर बडे निर्भीक थे। उनमें युगांतरकारी भावनाएँ थी। उन्होने तत्कालीन हिन्दू और यवन धर्म तथा उनके आचार्यों की निर्भीकता पूर्वक आलोचनाएँ की। आलोचना करने मे कबीर ने बडी निर्भीकता से काम लिया है। कबीर जिसे सत्य

समझते थे उसका प्रतिपादन करने मे कभी भी पीछे न हटे। कहते है अपनी इसी निर्भीक और आलोचक प्रकृति के कारण एक बार उन्हे तत्कालीन लोदी सम्राट सिकन्दर के कोप का भाजन बनना पडा था।

कबीर की मृत्यु सवत् १५७५ मे मगहर मे हुई। उस समय उनकी अवस्था ९६ वर्ष या इससे कुछ अधिक थी। कबीर-पथियो के कथनानुसार कबीर की मृत्यु पर उनके शव के लिए हिन्दुओ और मुसलमानो मे विग्रह उपस्थित हो गया था। हिन्दू कबीर के शव को जलाना चाहते थे और मुसलमान उसे दफनाना चाहते थे; किन्तु इस विग्रह से कबीर का शव लुप्त हो गया और उसके स्थान पर कुछ फूल अवशेष रह गए। हिन्दुओ और मुसलमानो ने उन फूलो को आपस मे बॉट लिया। किन्तु इसकी सत्यता के सम्बंध मे इतिहास मे कोई प्रमाण नही मिलता।

मगहर मे कबीर के मृत्यु-स्थान पर इस समय भी एक समाधि और एक मकबरा बना हुआ है।

रचनाएँ—कबीर ग्रन्थकार नही थे। उनके द्वारा किसी विशेष ग्रन्थ की रचना नही हुई ह। वे पद और वाणियाँ बनाते थे और घूम-घूम कर जनता को उपदेश दिया करते थे। कबीर के उपदेशो से प्रभावित होकर उनके बहुत से शिष्य हो गए थे। कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यो ने उनके पदो, शब्दो, साखियो और रमैनियो का सकलन किया जिन्हे 'बीजक' कहते है। बीजक के तीन भाग है—साखी, सबद और रमैनी। बीजक के अतिरिक्त भी कबीर के नाम से सगृहीत पुस्तकें मिलती है जिनमें कबीर की रचनाएँ सगृहीत है। कई हस्तलिखित पुस्तके भी पाई गई है जिनमे कबीर की रचनाएँ हैं पर उन सब की भाषा बडी असयत और बेजोड है। उनके पदो मे भी सामंजस्य नही पाया जाता। अतः यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि वे कबीर की ही रचनाएँ हैं।

भक्ति का स्वरूप—भक्ति के क्षेत्र मे कबीर का अधिक महत्त्व है। कबीर ने अपनी भक्ति के द्वारा भक्ति-जगत मे एक नूतन और अलौकिक आदर्श की सृष्टि की है। वह नूतन होते हुए भी सर्वथा भारतीय है। उसमे प्रेम, विश्वास

और ज्ञान का संमिश्रण है। यद्यपि वह निर्गुणवाद पर आधारित है पर उसमें सगुणवाद की झलक मिलती है। कबीर की भक्ति को हम एक ऐसा संगम कह सकते है जिसमे तत्कालीन समाज मे प्रचलित स्वामी रामानन्द का भक्तिवाद, इस्लाम का एकेश्वरवाद, नाग-पंथ का हठयोगवाद और सूफियो का शांति तथा प्रेमवाद सिमट कर एक हो गया है।

कबीर एकेश्वरवादी थे। उनका एकेश्वरवाद त्रिगुणातीत था। कबीर के एकेश्वरवाद और ब्रह्म मे कुछ भी अन्तर नही है। उनका एकेश्वरवाद ब्रह्म के रूप मे समस्त विश्व मे परिव्याप्त है। कबीर का एकेश्वरवाद यद्यपि त्रिगुणातीत है पर उन्होने अपने ईश्वर की प्राप्ति के लिए कुछ साधन भी बताए है, जिनमे गुरु-पूजा और हठयोग का महत्वपूर्ण स्थान है।

कबीर का रहस्यवाद—कबीर भक्ति की उन्नत अवस्था मे रहस्यवादी बन गए थे; अर्थात् वे अपने 'राम' से विभिन्न सम्बन्ध स्थापित करके उससे कौतुक किया करते थे। कही उन्होने 'राम' को अपना प्रियतम मानकर उसके साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है और कही यह बताया है कि उनका प्रियतम 'राम' लोगो को किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। कही भक्ति के उन्माद मे कबीर की जीवात्मा नई नवेली दुलहिन का स्वरूप धारण करके अपने प्रियतम के सयोग का सुख लूट रही है तो कही वियोगिनी की भाँति हाहाकार कर रही है; तात्पर्य यह कि 'राम' का सान्निद्ध्य प्राप्त करने के पश्चात् कबीर ने विभिन्न दृष्टिकोणो से उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया है। अपने सम्बन्धो की अलौकिकता के लिए कबीर ने विभिन्न रूपको का आश्रय लिया है। कही-कही उनके रूपक इतने विचित्र है कि सर्व साधारण की बुद्धि से परे हो जाते है और लोग उन्हे कबीर की 'उल्टवासियाँ' कहकर सन्तोष कर लिया करते है। इन्ही 'उल्टवासियो' को विद्वानो ने 'कबीर के रहस्यवाद' के नाम से अभिहित किया है।

कबीर का रहस्यवाद कही अधिक गूढ और कहीं अधिक सरल है। जहाँ कही उन्होने अधिक भाव-विभोर होकर 'अपरोक्ष' से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है और वे अधिक आत्म-विस्मृत हो गए है, वहाँ उनका सम्बन्ध अधिक रहस्यमय हो उठा है। कही-कही वह इतना अधिक रहस्यमय होगया है

कि उस तक सहज रूप मे बुद्धि का गम्य नही होता। कबीर ने अपने सम्बन्ध को नाना रूपो मे प्रगट किया है किन्तु उन रूपो मे स्त्री-प्रेम की ही प्रधानता है। इसमे संयोग और वियोग दोनो की ही विह्वलता है।

काव्य-सौंदर्य—कबीर कवि नही थे एक दार्शनिक सन्त थे। उनकी रचनाओ मे एक भी ऐसी रचना नही है जिसका सम्बन्ध ससार के वाह्य स्वरूप से हो, अथवा जिसकी रचना संसार के किसी भी वाह्य स्वरूप की उत्प्रेरणा से की गई हो। ऐसा लगता है कि कबीर के ऊपर जगत के किसी वाह्य स्वरूप का प्रभाव भी नही पडा। उनकी रचनाओ मे कही भी किसी सुन्दर सरिता, किसी विकच पुष्प, किसी हरी-भरी घाटी, किसी रात की चन्द्रिका और किसी स्वर्णिम प्रभात का चित्रण नही मिलता। उन्होने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ समाज-सुधार और धार्मिक दृष्टिकोण से की हैं। उनकी रचनाओ के विषय भी समाज और धर्म मे ही सम्बन्धित है; जैसे—जाति-पाँति का भेद, ऊँच-नीच का भाव, रोजा-नमाज, मूर्तिपूजा, तिलक छाप और योग की क्रियाएँ इत्यादि। इनमे किसी मे प्रताडना है, किसी मे उपदेश है, किसी मे व्यंग्य है और किसी मे ललकार है। कही-कही, जहाँ वे रहस्यवादी बन गए है, वहाँ उन्होने प्रेम के सयोग और वियोग का भी चित्रण किया है। गुरु महिमा, ईश्वर प्रेम, प्रेम का महत्व और सन्त समागम आदि विषयो पर भी उन्होने कविताएँ की हैं।

कबीर की अनुभूतियाँ ही उनकी कविता है। कबीर की अनुभूतियो को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है। इन अनुभूतियो का एक भाग तो वह है जिसे कबीर ने 'अपरोक्ष' के प्रति अधिक प्रेमी और वियोगी बनकर प्राप्त किया है। अनुभूतियो के दूसरे भाग मे समाज सम्बन्धी उत्प्रेरणाएँ है। अपने प्रथम प्रकार की अनुभूतियों मे कबीर रहस्यवादी बन गए है, किन्तु दूसरी प्रकार की अनुभूतियो मे वे केवल सुधारक मात्र रह गए हैं। साहित्य जगत मे कबीर की सुख्याति का कारण उनकी प्रथम प्रकार की अनुभूतियाँ है जिनमे रहस्यवाद पूर्णता के साथ प्रतिफलित हुआ है। निम्नांकित पंक्तियो मे कबीर के रहस्यवाद की झलक देखिए—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ, जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी ॥

× × × ×

पानी के बिच मीन पियासी,
मोहिं देखि-देखि के आवे हाँसी ।
आतम ज्ञान कोई न बूझै,
क्या जावे काबा काशी ॥

किन्तु क्या उनकी अनुभूतियो मे काव्य-कला भी है ? क्या एक सफल कवि की भाँति ही उन्होने उनका प्रसाधन किया है ? इन प्रश्नो की विवेचना करने पर यह निःसंकोच कहना ही पडता है कि कबीर कवि नही थे । उनकी रचना उस कंठ से नि.सृत नही हुई है जिसे कवि का कठ कहते है । कबीर का कठ किसी कवि का कठ न होकर सुधारक और विवेचक का कठ है । उनकी रचनाओं में कवि की सम्पदा, जिसे रस, अलकार, शैली का चमत्कार, भाषा का सौष्ठव और छन्दो की लालिमा कहते है, नही मिलती । भावना और अनुभूतियाँ हैं पर वे नीरस और शुष्क है । किन्तु इसमे संदेह नही कि उन्होने जो कुछ कहा है हृदय से कहा है और तन्मय होकर कहा है । कवि का कलात्मक चमत्कार न होने पर भी उनकी रचनाओं मे आत्मा को विभोर कर देने की अतुल शक्ति है । उनकी रहस्यवादी भावनाएँ और अनुभूतियाँ उच्च कोटि की है । उनके सयोग और वियोग के रहस्यात्मक चित्रो मे उनकी कला की सूक्ष्मता देखने को मिलती है जो अपने ढंग की अपूर्व है । कबीर अपने इन चित्रों मे एक उत्कृष्ट भाववादी कवि के रूप मे प्रगट हुए हैं । कबीर के चित्र अनुपम और अद्वितीय है ।

शैली—कबीर की सम्पूर्ण रचनाएँ पदो, साखियो, सब्दो और रमैनियो मे है । उन्होने दोहो और विभिन्न राग-रागिनियों मे भी अपनी रचनाओं को ढाला है । उनके पदों, साखियो, सब्दो और दोहो मे अस्त-व्यस्तता है । उनकी राग-रागिनियो मे भी एकरूपता और संबद्धता नही पाई जाती । इसका कारण यह है कि उन्हें छन्द-शास्त्र का ज्ञान नही था और वे राग-रागिनियों से अनभिज्ञ थे ।

कबीर की शैली बडी निर्भय और ओजपूर्ण है। वह अपने आप मे अधिक मौलिक है। उसमे गंभीरता और विवेचना दोनो ही है। साधारण रूप से हम कबीर की शैली को दो रूपो मे विभक्त कर सकते हैं—तर्कपूर्ण शैली और भावात्मक शैली। तर्कपूर्ण शैली मे वे सभी पद आते है जो समाज-सुधार की भावना से कहे गए है और जिनमें समाज की रूढियो और सकीर्णताओं पर कटाक्ष किया गया है। कबीर की यह शैली बडी तर्कपूर्ण है और उसमे विवेचना का तीव्र प्रवाह मिलता है। कबीर की दूसरी शैली, जिसे भावात्मक शैली कहते है, उनकी रहस्यवादी रचनाओ मे प्रगट हुई है। यह बडी गभीर और सरस है। इसी शैली मे कबीर का वह रूप मिलता है जिसे हम कवि का रूप कहते है। कबीर की उलटवासियाँ और अन्योक्तियाँ इसी शैली के अन्तर्गत आती हैं।

भाषा—कबीर की शैली की भाँति उनकी भाषा भी बडी अद्भुत है। उनकी भाषा में कई भाषा के शब्दो का संमिश्रण है। उन्होने विभिन्न भाषाओं के शब्दो की सहायता से अपने लिए एक पृथक भाषा का निर्माण किया है। कबीर की यह भाषा बडी सरल और बोधगम्य है। सौष्ठव की दृष्टि से उसमें अभाव अवश्य है पर शब्दो के ओज और प्रभावपूर्णता के कारण वह बड़ी प्रभावमयी है। उसमें प्रवाह और ओजस्विता की मात्रा भी अधिक है।

कबीर की भाषा में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का संमिश्रण है; जैसे—अवधी, खडी बोली, ब्रज भाषा, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी, पंजाबी और संस्कृत इत्यादि। कबीर एक सन्त थे। सन्त के रूप मे वे पर्यटक थे। उनका उद्देश्य समाज में धार्मिक भावना का प्रसार करना था। वे अपने उद्देश्य और सिद्धान्तो के प्रचार तथा प्रसार के लिए विभिन्न स्थानो की यात्राएँ किया करते थे। उनके लिए यह आवश्यक था कि वे अपने सिद्धान्तो के प्रचार के लिए प्रत्येक स्थान मे बोली जाने वाली बोली मे ही अपनी रचनाएँ करें जिससे उस स्थान की जनता उनके उद्देश्यों और सिद्धान्तो को समझ सके। कबीरदास जी ने यही किया भी। उन्होने विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की और वहाँ की बोलियो के शब्दों को अपनी रचनाओं मे स्थान दिया। बहुतसी बोलियों के

शब्द कबीर को उन सन्तों और फकीरो से भी प्राप्त हुए है जिनके सम्पर्क मे वे प्रायः रहा करते थे।

कबीर ने अपनी रुचि के अनुसार ही शब्दो का प्रयोग किया है। शब्दो के प्रयोग मे उन्होने शब्दो की शुद्धता पर अधिक ध्यान न देकर हृद्गत भावो पर ही अधिक ध्यान दिया है। संस्कृत, अरबी और फारसी के शब्दो को उन्होने तोडा-मरोडा भी अधिक है। शब्दो के उस तोड-मरोड मे चाहे कुछ भी दृष्टिकोण रहा हो पर उन शब्दो का जो विकृत रूप हमारे सामने है उससे तो यही ज्ञात होता है कि कबीर ने उन शब्दो को तोड कर सरल से सरल बनाने की चेष्टा की है। कही-कही तो ये शब्द इस प्रकार तोडे-मरोडे गए है कि उनकी वास्तविकता लुप्त होगई है। शब्दो के इस तोड-मरोड ने कबीर की भाषा की साहित्यिकता को अवश्य नष्ट कर दिया है पर इसमे सन्देह नही कि इससे कबीर की भाषा अधिक सरल बन गई है और वह सर्व साधारण के लिए अधिक उपयुक्त हो गई है।

---

२ सूरदास

जन्म संवत् १५३५
मृत्यु संवत् १६२०

परिचय—सूरदास जी का जन्म संवत् १५३५ के आस-पास माना जाता है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार उनका जन्मस्थान रुनकता नामक गाँव है जो मथुरा और आगरा की सड़क पर स्थित है। कुछ लोग इनका जन्मस्थान दिल्ली के निकट सीही नामक गाँव बताते है। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामदास था। 'साहित्य लहरी' के एक पद के अनुसार कुछ लोग इन्हे 'ब्रह्म भट्ट' और चन्द्र वरदाई का वशज मानते हैं।

सूरदास जी का पालन पोषण किस प्रकार हुआ और उन्होने किससे, किस प्रकार शिक्षा प्राप्त की इस सम्बन्ध मे कुछ भी पता नही चलता। अनुसंधान से केवल इतना ही अब तक ज्ञात हो सका है कि ये आगरे मे गऊघाट पर निवास करते थे और अपने सुललित पदो को तानपूरे के तारो पर उतार कर अपना जीवन व्यतीत किया करते थे। संयोगत. एक दिन गऊघाट मे ही उनका महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से, जो बल्लभ संप्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य और प्रवर्तक थे, भेंट हुई। उन्होने जब सूरदास जी के सुमधुर और सुललित पद सुने तो उनका चित्त आह्लाद से गद्गद् हो गया। उन्होने सूरदास जी को अपने संप्रदाय मे दीक्षित कर लिया और यह सलाह दी कि वे श्रीमद्भागवत की कथा को गेय पदो के रूप मे परिवर्तित करे। सूरदास जी का 'सूरसागर' उन्ही की सुन्दर सलाह का परिणाम है।

वल्लभाचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने आठ सुप्रसिद्ध कवियो को लेकर 'अष्टछाप' की रचना की। इन आठो कवियो के नाम

इस प्रकार है —सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्ददास, चतुर्भुजदास और नंददास। इनमे सूरदास जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ और सर्व प्रथम है।

सूरदास जी जन्मांध थे या नही इस संबंध मे विद्वानो मे मतभेद है। कहा जाता है कि यौवनावस्था मे सूरदास जी का किसी सुन्दर स्त्री से प्रेम था और उसकी भर्त्सना से उन्होने प्रायश्चित स्वरूप अपनी आँखें फोड ली थी। इसके विपरीत किसी-किसी का यह भी मत है कि वे जन्मांध थे। कुएँ मे गिरने की बात का उनके पदो मे भी उल्लेख है। जो हो, इतना सत्य है कि सूरदास जी आँखो से अंधे थे।

संवत् १६२० के लगभग पारसोली नामक गाँव में सूरदास जी की मृत्यु हुई। मृत्यु के अंतिम क्षणों तक सूरदास जी सज्ञात और चेतनाशील बने रहे। वे भाव-विभोर होकर बराबर अपने पदो का गान करते रहे। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने, जो मृत्यु के समय सूरदास जी के समीप ही थे, सूरदास जी की इहलौकिक लीला समाप्ति का बडा ही रहस्यमय चित्र अंकित किया है।

रचनाएँ—सूरदास जी की रचनाओ के रूप मे उनके तीन ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है—सूर सागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी। ब्याहलो, नल-दमयती और नाग लीला इत्यादि भी इनके ग्रंथ बताये जाते हूँ, किन्तु ये कही न तो उपलब्ध है और न उनके सम्बन्ध मे प्रमाण ही प्राप्त होता है। अत. विद्वानो ने सर्व-सम्मति से इनके तीन ही ग्रंथ माने हैं।

भक्ति का स्वरूप—सूरदास जी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। वे ही उनके आराध्य देव थे, पर उन्होने अपने सूरसागर मे दशम स्कंध तक की कथा में जब अवतारो का वर्णन किया है तो रामावतार की कथा का वर्णन अन्यान्य अवतारो की कथाओ की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार के साथ है किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास जी ने अन्यान्य अवतारो को श्रीकृष्ण की ही ज्योति का अंश मान कर उनका वर्णन किया है। यह भी हो सकता है कि उन्होने श्रीराम इत्यादि अवतारो का वर्णन करके अपने हृदय की उदारता और

विशदता प्रगट की हो; वस्तुतः वे श्रीकृष्ण के ही भक्त थे। श्रीकृष्ण की भक्ति में ही उनके हृदय की स्वाभाविकता और तल्लीनता प्रगट हुई है।

अब यह देखना है कि सूरदास जी की भक्ति का स्वरूप क्या था ? भक्ति नौ प्रकार की होती है, जो नवधा कहलाती है। उनके नाम इस प्रकार है—श्रवण, कीर्तन, चरण सेवन, अर्चन, वेदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। भक्ति के इन प्रकारो को सामने रख कर जब हम सूरदास जी की भक्ति के स्वरूप को समझने की चेष्टा करते है तो ऐसा ज्ञात होता है कि सूरदास जी की भक्ति मे भक्ति के सभी प्रकारो ने सिमट कर विनय, प्रेम और सख्य का रूप धारण कर लिया है। यो तो सूरदास जी के ऐसे भी अनेक पद है जिनमें पृथक-पृथक भक्ति के अंगो का विकास हुआ है और कही-कही सभी अंग एक साथ ही झलक उठे है, पर उनमे 'विनय' और 'सख्य' भाव की ही प्रधानता अधिक पाई जाती है। सूरदास जी की भक्ति इन दो स्वरूपो मे जितनी विकसित हुई है उतनी और किसी भी स्वरूप मे नही। उनका सख्य स्वरूप तो अद्वितीय है।

विनय-भक्ति के पद सूर सागर के प्रथम स्कंध मे संगृहीत है। यह पद उस समय के बनाए जान पडते है जब सूरदास जी गऊघाट मे निवास करते थे। इनके विनयपूर्ण पदो मे अनुकूल होने का संकल्प, भगवान की इच्छा के प्रतिकूल कुछ न कहने की दृढता, भगवान को भक्तिदाता और भक्त वत्सल मानने का भाव, समर्पण और दीन भाव विशेष रूप मे पाया जाता है। सूरदास जी पुष्टिमार्गी थे, उन पर वैष्णवो की पूर्ण छाप थी। अतः उनके विनय-पदो मे तत्कालीन वैष्णव संप्रदाय के विनय संबंधी सिद्धान्तो का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है जो प्रमुख रूप से इस प्रकार है—दीनता, मान मर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचरण।

सूरदास की भक्ति मे पहले दास्य और दैन्य भाव की प्रधानता थी। पर जब वे वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए तब उनकी भक्ति का स्वरूप सख्य भाव के रूप मे परिवर्तित हो उठा। इसका कारण यह था कि वल्लभाचार्य जी को दास्य भाव प्रिय नही था। उनकी भक्ति पद्धति मे लीला कीर्त्तन के द्वारा ही आराध्य देव का सान्निद्ध्य प्राप्त किया जाता था। भक्ति का सख्य स्वरूप ही ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन माना जाता था। अतः सूरदास जी ने भी भक्ति

के इसी स्वरूप को ग्रहण किया । उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ इसी स्वरूप से ओत-प्रोत है ।

सूरदास जी की सख्य भक्ति दो रूपो मे विकसित हुई है । एक रूप तो वह है जहाँ गोप, ग्वालो और कृष्ण का प्रसंग आया है; और दूसरा रूप वह है जहाँ राधाकृष्ण का प्रसग आया है । गोप, ग्वालों और कृष्ण के प्रसंग मे सूरदास जी की सख्य भक्ति मे अधिक स्वाभाविकता और श्रेष्ठता है । भक्ति के उस स्वरूप मे सूरदास जी अपने आराध्य देव मे समाविष्ट हो गए है । वे अपने और बालकृष्ण मे अन्तर नही मानते । प्रत्येक लीला क्षेत्र मे वे उनके साथ ही रहते है उनके साथ खेलते है, हँसी-ठट्ठा करते है, दौडते है, शरारत करते है, माखन चुराते है, लूट-खसोट करते है और गोपियो को तग करते है । राधा-कृष्ण के प्रसंग मे सूरदास की सख्य भक्ति का और अधिक विकास हुआ है । यहाँ सूरदास जी बालकृष्ण के सहचर नही है, बल्कि उस कृष्ण के तरुण सखा है जिनके अग-अग मे तरुणाई फूट रही है और जो प्रेम-व्यापार मे अधिक कुशल है । सूर अपने इस प्रेमाभिनयकुशल मित्रो के अतरंग सखा हैं । ऐसे सखा है जो प्रेमाभिनय मे भी उनके साथ-साथ रहते है । उनकी प्रत्येक प्रेम लीला जैसे उनकी ही आँखो के सामने आई हो और वे खडे-खडे उसका चित्रण कर रहे हो । सूरदास जी अपने मित्र के औचित्य और अन चित्य पर ध्यान ही नही देते, वे अपने सखा के अनौचित्य को भी शुद्ध प्रणय-व्यापार ही मानते है और उसमे विभोर हो जाते है ।

सूर के चरित्र—सूरदास जी ने अपने सूर सागर मे श्रीकृष्ण जी की लीलाओ का वर्णन किया है । सूर सागर मे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उन्हीं के चरित्र का चित्रण है । उनके चरित्र-चित्रण के संबंध मे और भी कई चरित्र हमारे संमुख आते है पर सबसे प्रमुख चरित्र श्रीकृष्ण का है । सर्व प्रथम उनकी बाल-लीला का दर्शन होता है । श्रीकृष्ण की बाल-लीला यद्यपि बहुत साधारण है पर सूरदास जी ने उसमे अलौकिकता की सृष्टि की है और यह प्रगट किया है कि उनमे दैवी शक्ति है । उनके बाल-चरित्र मे उन्होने अद्भुत शौर्य की व्यजना की है। पर उनके चरित्र की विशेषता उनके इस अद्भुत शौर्य

और पराक्रम के कारण नही है, बल्कि इसलिए है कि वे साधारण बालक की ही भाँति हमारे संमुख आते है और अपने अति स्वाभाविक रूप मे हँसते, खेलते तथा खाते है। बाल-लीला के पश्चात् श्रीकृष्ण की वह लीला प्रारम्भ होती है जिसे हम उनकी तरुणावस्था की लीला कह सकते है। अपनी इस लीला मे श्रीकृष्ण हमारे संमुख नायक के रूप मे उपस्थित होते है। नायक के रूप मे श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यधिक पूर्ण है। वे बडे चपल और निपुण है। रास-क्रीडा और जल-क्रीडा इत्यादि मे उनकी दक्षता प्रगट होती है।

ब्रज से मथुरा चले जाने पर श्रीकृष्ण सूरदास जी की दृष्टि से ओझल हो जाते है और फिर वे श्रीकृष्ण की स्मृति के रूप मे यशोदा, नंद, गोपियो और ग्वालो मे ही उलझ जाते है। श्रीकृष्ण के वियोग मे गोपियो के प्रेम और वियोग की एक धारा-सी प्रवाहित हो जाती है। यह धारा उस समय और भी अधिक उमड पडती है जब ऊधो मथुरा से ब्रज मे आते है और गोपियो को श्रीकृष्ण का सदेश सुनाते है। यही यह ज्ञान होता है कि श्रीकृष्ण कितने महान और कितने आराध्य है। सूरदास जी ने विरहिणी गोपियो के द्वारा यहाँ श्रीकृष्ण प्रेम की जो व्यंजना की है उससे श्रीकृष्ण की अलौकिकता का आभास होता है। वे कितने प्रेमी है, कितने आराध्य है, कितने पूजनीय है, और कितने प्रेय है—यह गोपियो के शब्द-शब्द से व्यजित होता है।

कृष्ण की भाँति ही राधा का चरित्र भी सूर सागर मे अद्वितीय है। श्री-कृष्ण के चरित्र के साथ ही साथ राधा का भी चरित्र चलता है। वास्तव मे बात तो यह है कि राधा का चरित्र श्रीकृष्ण के ही चरित्र का एक अग है। राधा के चरित्र के बिना कृष्ण का चरित्र अधूरा और विकलांग-सा दृष्टिगोचर होगा। सूरदास जी ने राधा को सहचरी और पत्नी के रूप मे चित्रित किया है। पहले वह प्रेमिका के रूप मे अवश्य उपस्थित होती है पर इसके पश्चात् वह भी कृष्ण के साथ अपनी गाँठ जोड लेती है और उनकी जीवन-सहचरी बन जाती है। राधा का प्रेम आदर्श है, महान है। वह कृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझती है और उनके लिए अपने अस्तित्व का परित्याग कर देती है। उसका प्रेम ऐहिक नही, वासना जन्य नही, पारलौकिक है।

गोप श्रीकृष्ण के सखा है। उनमे जो प्रौढ हैं वे वात्सल्य भाव से कृष्ण

लीला मे भाग लेते है और जो युवावस्था के है वे सखा रूप मे सामने उपस्थित होते है। उनकी श्रीकृष्ण मे अपार श्रद्धा है । वे श्रीकृष्ण की पूजा-अर्चना बडे भक्ति-भाव से करते है। गोपो की भाँति ऊधो भी श्रीकृष्ण के सखा है किन्तु वे श्रीकृष्ण के भक्त नही प्रकाण्ड ज्ञानी है। उनका निर्गुण-वाद मे अधिक प्रेम है। श्रीकृष्ण उन्हे सगुणसत्ता सिखाने के लिए ब्रज मे भेजते है। वे गोपियो का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम देख कर सगुणसत्ता को स्वीकार कर लेते है।

श्रीकृष्ण के चरित्र की पूर्णता मे गोपियो का चरित्र बडा महत्त्वपूर्ण है। प्रणयी और श्रद्धेय श्रीकृष्ण के चरित्र की महानता गोपियों के ही प्रेम और त्याग से प्रगट होती है। सूर सागर मे गोपियो के प्रेम और उनके त्याग का चित्र विशालता के चित्रपट पर तैयार किया गया है। सारा सूर सागर गोपियों के प्रेम और उनकी विरह-पीडा से भरा हुआ है । गोपियाँ श्रीकृष्ण की सच्ची अनुगामिनी है। वे श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला मे उनके साथ-साथ रहती है।

यशोदा वात्सल्य की प्रति मूर्ति है। उनका मातृत्व अपूर्व है, अभूतपूर्व है। सरलता और सहृदयता उनमे प्रचुर रूप से निवास करती है। उनमे रंचमात्र भी अहकार नही है। वे स्वामिनी होने पर भी सबसे मधुर संलाप करती हैं। बाल गोपाल के प्रति उनके हृदय का उमडना, ललकना और तरगित होना देखते ही बनता है। उनकी सी माता की स्वाभाविकता अन्यत्र बहुत कम दृष्टिगोचर होती है।

प्रेमानुभूतियाँ—सपूर्ण सूर सागर प्रेम की साधना से ओत-प्रोत है। भक्तिकाल मे सूरदास जी के समान प्रेम की उत्कट साधना करने वाला अन्य कोई कवि उत्पन्न ही नही हुआ। सूरदास जी स्वयं प्रेम के अवतार थे। उनकी अन्तरात्मा मे प्रेम है, वाणी मे प्रेम है और उनके शब्द-शब्द मे प्रेम है। उन्होने प्रेम की ही आराधना की है और उसी की साधना मे अपने संपूर्ण जीवन को उत्सर्ग कर दिया है। उन्होने प्रेम को भली प्रकार देखा है और उसके स्वरूपो से उनका प्रगाढ़ परिचय है।

सूरदास जी की प्रेमानुभूतियाँ बडी सरस, सुकुमार और स्वाभाविक हैं। वे हृदय के अन्तस्तल से निकलती है। उनमे तन्मयता और हृदय की गभीरता है। उनकी प्रमानुभूतियो मे आत्मा को तन्मय कर देने की शक्ति है, प्राणो को डुबा देने की सामर्थ्य है। वे मानव-हृदय को कस कर बाँध लेने मे बडी सशक्त है। उनमे प्रगाढ़ स्वाभाविकता और हृदय को बेधने की शक्ति है। उनमें पटुता और कर्मकुशलता है। सयोग और वियोग के मार्मिक चित्र बडी कुशलता के साथ बनते है।

सूरदास जी की प्रेमानुभूतियाँ विभिन्न क्षेत्रो की है। उन्होने अपने प्रेम का व्यापार जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे किया है। उन्होने वात्सल्यमयी जननी के रूप मे शिशु को प्रेम किया है, शिशु बन कर प्रेम से छलकते हुए माता के हृदय को देखा है, तरुण प्रेमी बन कर प्रेमिकाओ को छकाया है, सहचर बन कर मित्रता का आनद उठाया है, वियोगिनी बन कर वियोग की पीड़ा मे क्रदन किया है और निर्मम प्रेमी बन कर वियोगिनियो के तडपते हुए हृदय को देखा है। प्रेम का ऐसा कोई रूप और क्षेत्र नही जहाँ सूरदास जी न पहुँचे हों और जहाँ पहुँच कर उन्होने उसकी आराधना न की हो। यही कारण है कि सूरदास जी सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रेम-चित्रो को अकित करने मे अत्यधिक सफल हुए हैं। गोपियो के द्वन्द्वात्मक प्रेम-चित्रो को अकित करने मे तो वे सबसे अधिक आगे निकल गए है।

काव्य-सौंदर्य—सूरदास जी के काव्य-सोदर्य के दो पक्ष है—कला पक्ष और काव्य पक्ष। पहले हम सूरदास जी के काव्य-सौंदर्य के कला पक्ष पर विचार करेंगे क्योकि यही सूर की कविता का प्राण है। कला पक्ष से हमारा तात्पर्य उन अनुभूत भावनाओ से है जो किसी भी कवि की रचना में प्राण-सरीखी सचरित होती है; दूसरे शब्दो मे जो कवि की सफलता है, सिद्धि है और सुख्याति है। सूरदास जी की अनुभूतियाँ बडी स्वाभाविक, सरस, सुकुमार और सत्य के निकट है। वे अपने विषय के अधिक सन्निकट थे। उन्होने उन विषयो को अधिक निकट से देखा था जिन्हें आधार मान कर उन्होने अपनी रचनाओ का शृगार किया है।

सूरदास जी की कला के वास्तविक रूप को समझने के लिए दशम स्कन्ध के उन विषयों पर दृष्टिपात करना चाहिए जिनसे उनकी कला का शृंगार हुआ है। दशम स्कन्ध के जिन मौलिक विषयो से सूरदास जी की कला अधिक महत्व-पूर्ण बन सकी है उन्हे हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते है—बाल-लीला, राधाकृष्ण तथा गोपी-कृष्ण लीला और भ्रमर गीत।

दशम स्कन्ध सूरदास जी के बाल-चित्रण से अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। इस स्कन्ध मे सूरदास जी ने वात्सल्य रस का ऐसा अनुपम स्रोत बहाया है कि देखते ही बनता है। वात्सल्य रस पर सूरदास जी का पूर्ण आधिपत्य है। वात्सल्य रस के इनके द्वारा ऐसे सहज और सुन्दर चित्र अंकित हुए है जो कही अन्यत्र देखने को नही मिलते। बाल स्वभाव का चित्रण उन्होने बडी अपूर्वता से किया है। इसका कारण यह है कि सूरदास जी का हृदय बडा सरल और स्नेह-पूर्ण था। वे पुरुष होकर भी मातृ हृदय के मर्म को भली भाँति जानते थे।

सूरदास जी बालकृष्ण के लिए स्वयं यशोदा बने हुए दृष्टिगोचर होते है। वे यशोदा की भाँति ही बालकृष्ण को स्नेह करते है, उन्हे दुलारते है और पुचकारते है। इतना ही नही, उन्हें माखन खिलाते है और झूला झुलाते है, आवश्यकता पडने पर उन्हे डाँटते भी है। कभी-कभी उन्हे डोरी से भी बाँधते है। इधर यशोदा के रूप में सूरदास मातृ-हृदय का वैभव प्रगट करते है, और उधर बालकृष्ण के रूप मे बाल-क्रीडा भी करते है। सूरदास जी के इन दोनों ही रूपों मे बडी स्वाभाविकता और मनोहरता है। इन दोनो ही स्वरूपो के कितने ही चित्र सूरदास जी ने अंकित किए है। उनके सभी चित्र विभिन्न होते हुए भी आपस मे जुडे हुए ज्ञात होते है। उनके इन सभी चित्रो को चार भागो में विभाजित किया जा सकता है—रूप सौंदर्य के चित्र, संस्कारो तथा समारोहों के चित्र, अन्तर्भावों के चित्र और चेष्टाओ तथा क्रीडाओ के चित्र।

सूरदास जी ने रूप-सौंदर्य का चित्रण दो रूपो मे किया है—एक लौकिक रूप मे और दूसरा अलौकिक रूप मे। अलौकिक रूप-चित्रो मे उन घटनाओं का सन्निवेश है जो श्रीकृष्ण के अलौकिक बाल-चरित्रो से सम्बन्ध रखती है और जिनसे यह प्रगट होता है कि श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा है। यद्यपि ये रूप-चित्र मानवी सौंदर्य से परे के चित्र है किन्तु उनमे भी मानव-हृदय के लिए एक

अपनापन है एक प्रबल आकर्षण है। उनकी यही सब से बडी विशेषता है कि वे मानव-हृदय से सुदूर होने पर भी उसके सन्निकट जान पडते है। उनके लौकिक रूप-चित्रो का तो कहना ही क्या है ? वे तो सूरदास जी की विभूति है। वे इतने सजीव और इतने प्राणमय है कि हृदय पर अपनी छवि उतार देते है।

सूरदास जी ने विविध समारोहो और उत्सवो का भी चित्रण किया है, जैसे—छट्ठी उत्सव, अन्नप्राशन लीला, वर्षगाँठ लीला, कनछेदन लीला और पाँयनि चलनि उत्सव इत्यादि। इन चित्रो मे भी दो प्रकार की झाँकियाँ मिलती है—एक लौकिक और दूसरी आध्यात्मिक। दोनो ही झाँकियाँ अपूर्व और अलौकिक है। दोनो ही झाँकियो मे अपने-अपने भावो की सहज प्रचुरता है जो मन को विमुग्ध कर लेती है।

श्रीकृष्ण की वय के साथ ही साथ सूर की रचनाओ ने भी वय की सीढियाँ पार की है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से किशोरावस्था मे पहुँचे हैं उसी प्रकार सूरदास जी ने भी बाल-चित्रण के पश्चात् उस जीवन का चित्रण किया है जिसे हम प्रेम का जीवन कहते है। प्रेम के चित्रण मे श्रीकृष्ण के साथ राधा और गोपियो का जीवन भी परिवर्तित हो जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण एक रसिया नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते है और राधा तथा गोपिकाएँ नायि-काओ के रूप मे। राधा प्रेम की साकार प्रतिमा है। वह श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम रखती है, पर श्रीकृष्ण केवल राधा के ही प्रति अनुरक्त न होकर सभी गोपिकाओ से प्रेम करते है। उनके लिए राधा और अन्य गोपिकाएँ एक ही समान है। इस प्रकार सूरदास जी ने प्रेम को विशालता का स्वरूप प्रदान किया है। सूरदास जी के प्रेम मे सर्वत्र अलौकिकता है, वह अलौकिक होते हुए भी आध्यात्मिक भावों से पूर्ण है।

सूरदास जी का काव्य पक्ष भी अधिक प्रबल है। काव्य पक्ष से हमारा तात्पर्य काव्य के वाह्यांगो से है जिन्हे रस, अलंकार, चित्रमयता, सौन्दर्यांकन, भाषा और छन्द कहते है। सूरदास जी की रचनाओ मे यों तो सभी रसो का पुट है पर शान्त रस अपनी विशेषता के साथ उपलब्ध होता है। जहाँ शान्त रस है, वही सूरदास जी की वास्तविकता भी प्रगट हुई है। उनके ब्रज सम्बन्धी महिमा और विनय-पदो मे शान्त रस का ही प्रादुर्भाव हुआ है। सूरदास जी

की वे रचनाएं, जिनमे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का चित्रण है, वात्सल्य रस से ओतप्रोत है। वात्सल्य रस दो वर्गों मे विभक्त है। एक वर्ग तो वह है जिसमे श्रीकृष्ण यशोदा के साथ ही रहते है और दूसरा वह है जिसमें यशोदा, नन्द और श्रीकृष्ण के विरह की कथा है। सूरदास जी की रचनाओ मे वात्सल्य रस के दोनो ही वर्गों का विकास हुआ है।

सूरसागर मे वात्सल्य रस के पश्चात श्रृंगार रस का ही स्थान है। बाल-लीला के प्रसंगो को छोड कर दशम स्कध श्रृंगार रस से ओतप्रोत है। श्रृंगार रस के भी दो स्वरूप है—एक सयोग और दूसरा वियोग। दोनो ही स्वरूपो मे श्रीकृष्ण और राधा तथा गोपिकाओ के प्रेम-प्रसग की प्रधानता है। सूरदास जी ने सयोग और वियोग दोनो ही अवस्थाओ का मार्मिक चित्रण किया है। चित्रण मे शिष्टता और मर्यादा है। सूरदास जी जैसा शिष्ट और मर्यादित श्रृंगार रस अन्यत्र बहुत कम मिलता है। अद्‌भुत रस की अवतारणा भी बडी कुशलता के साथ हुई है। असुर बध, गोबर्द्धन धारण, काली दमन और इन्द्र गर्व दमन, इत्यादि कथाओ मे अद्‌भुत रस अद्‌भुत ढंग से प्रवाहित हुआ है। यत्र-तत्र भयानक, वीर और करुण रस भी सूर सागर मे मिलते है।

सूरदास जी ने अपने काव्य मे चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अलकारो का भी प्रयोग किया है। शब्दालंकारो मे यमक, अनुप्रास और वीप्सा का प्रयोग उनकी रचनाओ मे अधिक मिलता है। यमक का प्रयोग उन्होने दृष्टि-कूट सम्बन्धी पदो मे अधिक किया है। शब्दालंकारो की अपेक्षा अर्थालकार उनकी रचनाओ मे बार-बार आते है। अर्थालंकारो मे उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक और प्रतीप उन्हे बहुत प्रिय है।

सूर की कल्पनाओ मे चित्रमयता अधिक है, इसलिए उपमा का प्रयोग उन्होने बहुत अधिक किया है। उपमा के दृष्टान्त उनकी रचनाओं मे उच्च-कोटि के प्राप्त होते है। रूपक पर भी सूरदास जी की अधिक आस्था है। रूपक मे भी सांगरूपक उनकी रचनाओ मे अधिक मिलता है। सांगरूपक के मनोहर चित्र उन्होने बडे कौशल के साथ दिए है। उत्प्रेक्षा से तो सपूर्ण 'सूर सागर' भरा हुआ है। उपमा के पश्चात् यही अलंकार है जिसका सूरदास जी ने सर्वाधिक प्रयोग किया है।

भाषा सौष्ठव—सूरदास जी की भाषा विशुद्ध ब्रज है। सूर ब्रज भाषा के सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ कवि है। सबसे पहले उन्ही के द्वारा ब्रजभाषा का सुंदर और सुव्यवस्थित रूप सामने उपस्थित हुआ है। उनकी भाषा मे स्वाभाविकता और व्यावहारिकता की छटा है। वह चलती हुई है और बोलचाल की भाषा से अपना महत्वपूर्ण सबध रखती है। सूरदास जी ने अपनी प्रतिभा शक्ति से उसे परिमार्जित करके साहित्यिकता का स्वरूप प्रदान किया है। वह सयत, गठी हुई और प्रवाहपूर्ण है। माधुर्य और प्रसाद उसका गुण है। उसमे अर्थ और भाव-व्यजना की अपूर्व शक्ति है। संस्कृत के तत्सम और ब्रज भाषा के ठेठ शब्दो से उसका श्रृंगार हुआ है। कही-कही अवधी, फारसी, पजाबी, गुजराती और बुंदेलखडो के शब्द भी उसमे प्राप्त होते है; किन्तु इन शब्दो के प्रयोग से उसकी प्रवाहशीलता मे कोई बाधा उपस्थित नही होती। फारसी इत्यादि भाषाओ के शब्द तद्‌भव रूप मे प्रयुक्त हुए है। कही-कही शब्द तोडे-मरोडे भी गए है, पर शब्दो के तोडने-मरोडने से सौदर्य मे न्यूनता नही आने पाई है। यत्र-तत्र व्याकरण की अशुद्धियाँ भी मिलती है। लोकोक्तियो और मुहाविरो का प्रयोग भी सूरदास जी ने बडी निपुणता के साथ किया है।

सूरदास जी का भाषा पर प्रभुत्व है। उन्होने भावो के अनुरूप ही अपनी भाषा का निर्माण किया है। उनके शब्द उनके भावों को प्रगट करने मे बड़े निपुण और पटु है। उनमे ओजस्विता, माधुर्य और भाव-व्यंजना की अपूर्व शक्ति है।

शैली का चमत्कार—सूरदास जी की शैली गीति-काव्यो की है। उनके पदो का गीति-माधुर्य ही उनकी सबसे बडी विशेषता है। सूरदास जी इस शैली के प्रथम और अन्तिम आचार्य हैं। प्रथम इसलिए कि सर्वप्रथम उन्होने ही इस शैली के परिष्कृत और परमोज्ज्वल स्वरूप को सामने प्रस्तुत किया, यद्यपि सूरदास जी के बहुत पूर्व लोक-गीतो के रूप मे यह शैली जन-वर्ग मे प्रचलित थी। साहित्य मे भी नाथ-सम्प्रदाय के साधुओ—जयदेव और विद्यापति इत्यादि कवियो—के द्वारा इस शैली को स्थान प्राप्त हो चुका था, पर हिन्दी काव्य

साहित्य में इसके परिमार्जित स्वरूप को उपस्थित करने का श्रेय सूरदास जी को ही है।

सूरदास जी की यह शैली उनके आचार्यत्व को प्रगट करती है। उनकी यह अपनी शैली है। कहीं-कहीं वह विद्यापति और जयदेव की शैली से अवश्य प्रभावित जान पडती है पर उसकी सबसे बडी विशेषता यही है कि उसमें सूरदास जी की मौलिकता है। उसके शब्द, उसकी भावधारा, उसका विन्यास सब कुछ सूरदास जी का अपना है। उसकी सजीवता, उसकी गाम्भीरता, उसकी चित्रमयता और उसकी स्वाभाविकता दर्शनीय है।

सूरदास जी ने अपने जीवन के अनुरूप ही इस शैली को चुनकर अपने काव्य में अपूर्व लालित्य भर दिया है। उन्होंने अपनी इस शैली में काव्य और संगीत का समन्वय किया है, इसलिए उनकी शैली और भी अधिक आकर्षक बन गई है। उनकी शैली कई रूपों में हमारे सामने आती है क्योंकि उन्होंने एक ही विषय को भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखा है, और उस पर इतना लिखा है कि उसमें पुनरुक्ति का दोष आ गया है, पर यह दोष भी उनकी रचनाओं का गुण-सा प्रतीत होता है क्योंकि इससे उनकी दक्षता प्रगट होती है।

३ मलिक मुहम्मद जायसी

जन्म संवत् १५५१
मृत्यु संवत् १५६६

परिचय—हिन्दी के मुसलमान कवियो में जायसी का प्रमुख स्थान है। राय बरेली जिलान्तर्गत जायस नामक एक ग्राम है। जायसी का जन्म इसी ग्राम मे हुआ था। जायस ग्राम मे जन्म लेने ही के कारण ये जायसी कहलाने लगे। मलिक उनकी पैतृक उपाधि थी। उनका जन्म ९०० हिजरी मे हुआ था। उन्होने अपने जन्म के सम्बन्ध मे अपनी पुस्तक "आखिरी कलाम" मे लिखा है—

"भा अवतार मोर नव सुदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥"

किसी-किसी का कथन है कि जायसी कहीं अन्यत्र से आकर जायस मे बस गए थे, पर यह कथन नितान्त भ्रम मूलक है। जायसी के घर का स्थान अब भी जायस के कंचोन मुहल्ले मे विद्यमान है। जायसी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' मे अपने कुछ मित्रों के परिचयात्मक नाम लिखे है। जायसी के उन मित्रो के सम्बन्ध में आज भी जायस मे जन-श्रुतियाँ कही जाती है।

जायसी कुरूप और एक आँख के काने थे। उन्हे कान से भी कम सुनाई देता था। लोगो का कथन है कि जायसी बाल्यावस्था मे शीतला या अर्द्धांङ्ग रोग से पीडित हुए थे जिससे उनका शरीर विकृत होगया था और वे एकनेत्र तथा श्रवण-शक्ति से रहित हो गए थे। जायसी ने स्वयं अपनी नेत्र और श्रवण-शक्ति-विहीनता का वर्णन बडे गर्व के साथ किया है—

"मुहम्मद बाँई दिसि तजा, एक सरवन एक आँखि।"

मलिक मुहम्मद जायसी एक साधारण गृहस्थ के ही रूप मे निवास करते थे। उनके माता-पिता का बाल्यावस्था मे ही स्वर्गवास हो चुका था, अत' यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि उनकी शिक्षा कहाँ और किस प्रकार हुई। किन्तु इसमे संदेह नही है कि हिन्दू-धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तो का ज्ञान उन्हे प्राप्त था। वे प्रारम्भ से ही ईश्वर-भक्त और साधु-प्रकृति के थे। साधु-सन्तो का साथ उन्हे अधिक प्रिय लगता था। साधु-सन्तो के साथ मे निरन्तर रहने के कारण उनमे अधिक धार्मिकता उत्पन्न होगई थी।

कहते है कि जायसी के पुत्र भी थे, जो मकान के नीचे दबकर मर गए थे। इससे जायसी के हृदय को अधिक आघात लगा और वे विरक्त होकर फकीर के रूप मे इधर-उधर पर्यटन करने लगे। जायसी अपने समय के उच्चकोटि के फकीर थे। चारो ओर उनका अधिक मान था। अमेठी के राजा रामसिंह की उन पर बडी श्रद्धा थी। जीवन के अन्तिम दिनो मे जायसी अमेठी से कुछ दूर वानवन मे रहा करते थे। वही ९४९ हिजरी मे जायसी की मृत्यु हुई। जायसी की मृत्यु के सम्बन्ध में एक जन-श्रुति कही जाती है जिसका योग की अलौकिकता से सम्बन्ध है।

जायसी और निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परंपरा मे थे। शेख मुईउद्दीन ऊनके दीक्षा गुरु थे। जायसी का हृदय बडा उदार था। उनकी धार्मिकता उदारता और विशालता की ही पृष्ठभूमि पर आधारित थी। वे सूफी मुसलमान थे पर मुसलमान सूफी फकीरो के अतिरिक्त उन्हे अनेक हिन्दू संतो और संन्यासियो का साहचर्य प्राप्त था। इन संतो और संन्यासियो मे हठ योगियों, वेदांतियो और रसायनियो की प्रधानता थी।

रचनाएँ—जायसी इक्कीस ग्रंथो के रचियता माने जाते है पर इस समय उनकी तीन ही रचनाएँ मिलती है जिनके नाम इस प्रकार है—पद्मावत, अखरावट, और आखिरी कलाम। पद्मावत जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह कथात्मक प्रेम सम्बन्धी एक कथात्मक महाकाव्य है पर उसे प्रबन्ध काव्य नही कहा जा सकता क्योकि यह सर्गबद्ध नही है। जायसी ने इसकी कथा भारतीय इतिहास से ली है। कही-कही उसमे कल्पना का भी समावेश मिल गया

है। रूपकों के द्वारा उसे उन्होंने रहस्यमय भी बना दिया है। अखरावट में जायसी ने ईश्वर, सृष्टि, जीव और ईश्वर-प्रेम के संबंध में अपने विचार प्रगट किए है। 'आखिरी कलाम' में उनके वैयक्तिक जीवन का चित्रण है।

धार्मिक उदारता—जायसी सूफी धर्म के मानने वाले थे। उनके हृदय मे पर्याप्त उदारता थी। वे किसी भी मत या धर्म से घृणा नहीं करते थे। उनका मत अद्वैतवाद के ऊपर आधारित था। वे आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही मानते थे। वे सच्चे हृदय से 'अहं ब्रह्मास्मि' के पुजारी थे। यद्यपि सूफियो मे 'अनलहक' की भावना बहुत पहले से विद्यमान थी पर जायसी ने 'अह ब्रह्मास्मि' की भावना हिन्दुओ से ग्रहण की थी।

जायसी के ऊपर हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मों का प्रभाव पडा था। उन्होंने सूफीमत और प्रेम प्रधान वैष्णव धर्म—दोनो को ही हृदयगम किया था, और दोनो ने उन्हे प्रभावित किया था। सूफियो का एकेश्वरवाद और हिन्दुओ का 'अहं ब्रह्मास्मि'—दोनो ने ही जायसी के हृदय को अपना क्षेत्र बनाया था। उनमे पुराणो की भावना भी विद्यमान थी और नूर की छटा भी। जायसी ने जहाँ सृष्टि का वर्णन किया है वहाँ पुराणो की भावना और 'नूर' की छटा का अच्छा संगम हुआ है।

जायसी की प्रकृति बडी गुण-ग्राहिणी थी। उन्होने जहाॅ कहीं भी अपने सिद्धान्तो के अनुसार अच्छी बाते पाई, उन्हे निस्संकोच रूप से ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि जायसी की रचनाओ मे उनके युग की सभी श्रेष्ठ भावनाएँ मिलती है। उस समय दो श्रेष्ठ भावनाएॅ समाज मे प्रचलित थी। एक तो सूफी मत की भावनाएॅ, जिनमे 'प्रेम की पीर' की प्रधानता थी, और दूसरी वैष्णव धर्म की भावनाएॅ, जो प्रेम और भक्ति से ओतप्रोत थी। जायसी का हृदय दोनो का ही संगम था। उनका पद्मावत इसका दृष्टांत है।

जायसी सच्चे जिज्ञासु थे। उन्हें जहाँ कही भी ज्ञान मिलता था उसे वे निःसंकोच ग्रहण कर लेते थे। वे भेद-भाव को छोड कर प्रत्येक मतावलंबी साधु-संतो से मिलते और उनकी बातों को प्रेम से सुना करते थे। जायसी पहुँचे हुए महात्मा थे, उनमे योग की अखंड शक्तियाॅ थी, पर वे अधिक साधारण रूप में ही रहा करते थे। कबीर की भाॅति उन्होने कभी अपने पंथ को

चलाने का विचार नही किया। वे विशेष गुणो से संयुक्त होने पर भी सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण उनमे पूर्ण मात्रा मे विद्यमान था। साधना के क्षेत्र मे सर्वोच्चता प्राप्त करने पर भी उन्होने कभी अपने को 'उच्च' घोषित नही किया। उनकी धार्मिकता अहकार से रहित थी और उसमे उदारता का पूर्ण समावेश था। उन्हे ऐसा अलभ्य हृदय प्राप्त था जिसमे सभी महत्त्वो; जैसे वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण और शील इत्यादि को ग्रहण करने की शक्ति थी।

कबीर की भाँति जायसी के हृदय मे किसी के प्रति निन्दा और घृणा का भाव न था। वे लोक-व्यवस्था का सम्मान करते थे और उसी के अनुसार कार्य करते थे। उनका हृदय बडा हो सुकोमल और प्रेम की भावनाओ से परिपूर्ण था। क्या लोक पक्ष, क्या भाव पक्ष—दोनो की ही ओर उनकी प्रवृत्ति थी।

प्रेम की साधना—पद्मावत जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसकी रचना एक प्रेम-कहानी के आधार पर हुई है जिसमे वास्तविक तथ्यो के साथ कल्पना का भी सम्मिश्रण है। भारतीय समाज मे चार प्रकार का प्रेम प्रचलित हैं। एक प्रेम वह है जो विवाह सबध स्थापित हो जाने के पश्चात विकसित होता है, दूसरा प्रेम वह है जो विवाह के पूर्व होता है, तीसरा वह है जिसका विकास अधिकांशत. राजाओ के अंत·पुर मे होता है और चौथा वह है जो किसी के स्वरूप को देखने अथवा किसी के गुणो को सुनने के पश्चात् उत्पन्न होता है। जायसी ने अपने पद्मावत मे चौथे प्रकार के प्रेम का वर्णन किया है।

जायसी का प्रेम भारतीय समाज के परम्परा के ही अनुसार है, किन्तु वह फारस की प्रेम-कहानियो के आदर्श और प्रभाव से प्रभावित है। उसमे प्रम का आवेग नायक के ही हृदय मे उत्पन्न हुआ है जो भारतीय परम्परा के विरुद्ध है। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रेम का आवेग नायक के हृदय में न उत्पन्न होकर नायिका के हृदय मे उत्पन्न होता है। 'पद्मावत' के अतिम भाग मे जायसी ने फारस और भारतवर्ष—दोनो के ही प्रेमादर्शों का सम्मिलन किया है क्योंकि अन्तिम भाग में दोनो के ही मन मे प्रेमावेग उत्पन्न हो उठा है।

जायसी ने अपनी प्रेमकथा मे नवीनता और अलौकिकता का सम्मिश्रण किया है। उनके प्रेम के शृङ्गार मे शारीरिक भाव गौण और मानसिक प्रधान है। उन्होंने चुम्बन और आलिंगन इत्यादि का बहुत कम वर्णन किया है। इसके विपरीत मन की वेदना और हर्ष का बार-बार उल्लेख मिलता है। इतना ही नही, उन्होने अपनी प्रेम पद्धति मे भारतीय और फारस के आदर्शों का सम्मिश्रण भी किया है। उनकी प्रेम-पद्धति मे जहाँ फारस के इश्क के दास्तान वाली मसनवियो के प्रेम स्वरूप की प्रधानता है, वहाँ उसमे भारत के लोक-व्यवहार-संलग्न स्वरूप की झलक है। जायसी की प्रेम कथा एकान्तिक और गूढ होते हुए भी जीवन के विभिन्न अगो पर प्रकाश डालती है और पारिवारिक कथा सामाजिक चित्रो को भी हमारे संमुख उपस्थित करती है।

जायसी की कथा यद्यपि पूर्ण जीवन की कथा नही है, पर फिर भी उसमे ऐसे स्थल है जो जीवन के विभिन्न अंगो पर प्रकाश डालते है। जायसी की कथा का प्रेम एक होकर के भी कई रूपो मे व्यक्त हुआ है, जैसे—माता का प्रेम, युद्ध से प्रेम, स्त्री से प्रेम, पति का प्रेम इत्यादि। यद्यपि 'रामचरितमानस' की भाँति जायसी के प्रेम मे प्रेम के सभी स्वरूपो की पूर्णता नही है पर फिर भी उसके सभी स्वरूपो की झलक उसमे विद्यमान है।

जायसी की प्रेम-कथा सर्वोत्कृष्ट तो है पर उसके प्रारम्भिक स्वरूप मे लोभ की व्यंजना है, क्योंकि तोते के मुख से पद्मावती का अलौकिक रूप-वर्णन सुन करके ही रतनसेन के मन मे एक प्रकार का भाव उत्पन्न होता है। उस भाव को लोभ के अतिरिक्त और कुछ नही कहा जा सकता। यद्यपि जायसी ने अपने चित्रण मे इस बात को स्वीकार नही किया है पर यह तथ्य है कि जायसी की प्रेम कथा का पूर्वार्द्ध लोभ से ही प्रेरित है और इसीलिए उसमे अस्वाभाविकता भी आ गई है। इस अस्वाभाविकता का एक यह भी कारण है कि जायसी ने कथा के पूर्वार्द्ध मे लौकिक और अलौकिक प्रेम को एक साथ ही चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

जायसी की प्रेम कथा मे दाम्पत्य जीवन की परमावधि है। पति और पत्नी का आदर्श प्रेम पद्मावत के लौकिक पक्ष मे अधिक प्रबल रूप मे विकसित हुआ

है। रतनसेन के साथ जब पद्मावती का विवाह हो जाता है तब दाम्पत्य जीवन का रुचिर रूप देखने को मिलता है।

रहस्यवाद की झलक—जायसी की प्रेम कथा मे अलौकिकता है, दूसरे शब्दो मे उसमे अध्यात्म की पुट है। जायसी अद्वैतवादी थे इसलिए वह रहस्यवादी भी थे। रहस्यवाद का सम्बन्ध 'अद्वैतवाद' से ही है। अद्वैतवाद ज्ञान-क्षेत्र की वस्तु है। उसका सीधा सम्बन्ध कार्य की कल्पना या भावना से बिल्कुल नहीं होता। वह ज्ञान की वस्तु है और ज्ञान ही के द्वारा जाना जा सकता है। किन्तु जब हृदय की कल्पना ज्ञान से प्रभावित होती है तब ज्ञान का सचार भावना-क्षेत्र मे होता है और वह भावात्मक रहस्यवाद के रूप आविर्भूत होता है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है—एक को भावात्मक कहते है और दूसरे को साधनात्मक। साधनात्मक रहस्यवाद का सम्बन्ध योग की क्रियाओ से होता है। तंत्र और रसायन इत्यादि भी इसी के अन्तर्गत आते है। भावात्मक रहस्यवाद कई प्रकार का होता है। किसी मे भूत-प्रेत की सत्ता मानी जाती है और किसी मे एकेश्वरवाद की। ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाला रहस्यवाद उच्च-कोटि का होता है।

यद्यपि रहस्यवाद की भावना पहले से ही भारतीय साहित्य मे विद्यमान थी पर हिन्दी मे उसका स्फुरण और विकास सूफियो के ही प्रभाव के कारण हुआ। सर्व प्रथम कबीर पर यह प्रभाव पडा और उनकी वाणी के द्वारा रहस्यवाद आविर्भूत हुआ। कबीर मे भावुकता का अभाव था इसलिए उनका रहस्यवाद रूपक-सा ज्ञात होता है, जो वेदान्त और हठ योग पर आधारित है। इसके प्रतिकूल जायसी मे रहस्यवाद की भावना पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हुई है।

जायसी का रहस्यवाद दो रूपो मे प्रतिबिंबित हुआ है। उनकी रहस्य-भावना का एक रूप तो वह है जहाँ उन्होने परमात्मा को प्रियतम के रूप मे देखकर उसकी अखण्ड छबि और उसके रूप-माधुर्य का ससार मे अनुभव किया है, और दूसरी वह है जहाँ उन्होने पुरुष के समागम के लिए प्रकृति की उत्कंठा या विरह-विकलता का अनुभव किया है। दूसरे प्रकार की रहस्य भावना का विकास उनकी रचनाओ मे अधिक हुआ है। उनके 'पद्मावत' मे यही रहस्य-भावना अपनी विशेषताओ के साथ विद्यमान है।

जायसी के पात्र लौकिक है पर उन्होंने लौकिक के द्वारा अलौकिक की कल्पना की है। उनके पात्रो मे जो सौंदर्य है वह उस अपरोक्ष सत्ता का सौंदर्य है जो अक्षय और अमर है। जायसी प्रकृति के कण-कण मे भी उसी अक्षय सौंदर्य का दर्शन करते है। प्रकृति के नाना रूपों और क्रिया-कलापो मे वे उसे देखते है। उनके भीतर जो विरह है वह उसी के लिए है, और उनके भीतर मिलन का जो आनन्द है वह उसी के मिलन का आनन्द है। उनका प्रत्येक अक्षर प्रतीक है। प्रत्येक वर्ण सकेत-चित्र उपस्थित करता है। उनके पद्मावत की प्रेम और विरह की कथा पुरुष और प्रकृति के प्रेम-विरह की कथा है।

प्रबन्ध-पटुता—जायसी का पद्मावत उनका सुप्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ है। इस काव्य-ग्रन्थ को सामने रखकर अब हम इस बात की समीक्षा करेंगे कि जायसी प्रबन्ध-कल्पना मे कितने पटु थे। पद्मावत का पूर्ण रूप से अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि जायसी का लक्ष्य घटनाओं को आदर्श-परिणाम पर पहुँचाना नही है। वे कर्मों के शुभाशुभ परिणामो पर भी दृष्टि नहीं डालते। उन्होंने संसार की गति का चित्रण उसकी वास्तविकता के आधार पर ही किया है। पद्मावत मे ऐसे पात्रो की भी कल्पना नही की गई है जिससे मन मे विषमता की सृष्टि होती हो, अर्थात् न तो किसी सत्पात्र के दु:खो का अभिव्यंजन किया गया है जिससे कि मन मे क्षोभ उत्पन्न होता हो, और न किसी बुरे पात्र की समृद्धि का ही वर्णन है कि हृदय मे उदासीनता की सृष्टि हो। जायसी की प्रवृत्ति पूर्ण रूप से शान्ति की ही ओर है। वे शान्ति को ही मानव जीवन का परम लक्ष्य मानते है।

जायसी की प्रबन्ध पटुता को आँकने के लिए हम उसके दो भाग कर सकते है—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। जायसी का पद्मावत इतिवृत्तात्मक न होकर रसात्मक है। क्योकि इतिवृत्तात्मक प्रबन्ध काव्यो की भाँति उसके इतिवृत्ति की गति मे न तो जीवन की विविध दशाओ का संमिश्रण है और न उन दशाओं के प्रभाव से हृदय के भिन्न-भिन्न भावो का ही स्फुरण हुआ है। इसके विपरीत उसमे ऐसे मार्मिक स्थान है जिनमे हृदय को तल्लीन करने की अपूर्व शक्ति है। कथा के बीच-बीच मे भावोद्रेक करने वाली अनेक दशाएँ है। भावुकता

का अंश भी उसमे अधिक है । कथनोपकथन मे काव्य का चमत्कार है । अत. हम यह कह सकते है कि जायसी का प्रबन्ध काव्य पूर्णरूप से रसात्मक है ।

जायसी ने अपने पद्मावत मे सुख-दुख की अनेक दशाओ का चित्रण किया है जो रसात्मक प्रबन्ध काव्यो की प्रमुख विशेषताएँ है । उसमे प्रेम भी है और वियोग भी है । उसमे विपत्ति भी है और आनदोत्सव भी है । उसमे युद्ध भी है और शांति भी है । उसमे जय भी है और पराजय भी है । उसमे छल भी है और विश्वास भी हे । तात्पर्य यह कि उसमे जीवन की विविध दशाओ का चित्रण है । पर यह चित्रण गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस की भाँति सर्वाङ्ग पूर्ण नही है । उसका कारण यह है कि पद्मावत श्रृङ्गार-प्रधान है । कवि का ध्यान जितना श्रृङ्गार और प्रेम निरूपण की ओर है उतना मानव-जीवन और उसकी विभिन्न दशाओ की ओर नही । वह मानव-जीवन की विभिन्न दशाओ से तटस्थ होकर ही प्रेम की ओर अग्रसर होता हुआ दृष्टि-गोचर होता है, और यही उसका लक्ष्य भी है । वह मानव-जीवन को भूल करके अपने लक्ष्य की पूर्ति मे ही सलग्न है । उसने प्रेम के युगल स्वरूपो—वियोग और सयोग के चित्रण मे ही अपनी सपूर्ण प्रतिभा समाप्त करदी है । श्रृङ्गार का वर्णन उसने अधिक विस्तार के साथ दिया है ।

काव्य-कला—जायसी कुशल कलाकार थे । भक्ति-युग में उन्होने प्रेम की जो धारा प्रवाहित की उसी के कारण उनका नाम हिन्दी काव्य-जगत मे अधिक प्रसिद्ध है । जायसी की काव्य कला के दो स्वरूप हैं । एक वाह्य और दूसरा आन्तरिक । वाह्य रूप मे भाषा, छन्द, अलकार और रस इत्यादि आते है । काव्य का आन्तरिक स्वरूप कवि की अनुभूतियो, भावनाओ और कल्पनाओ से बनता है । जायसी मे काव्य के वाह्य और आन्तरिक—दोनो ही स्वरूपो की विशेषताएँ विद्यमान है । भाषा, छन्द, रस और अलंकारो की दृष्टि से भी जायसी की रचना अलंकृत है, पर उतनी नहीं जितनी कि आन्तरिक स्वरूप के कारण है । जायसी के काव्य मे आन्तरिक पक्ष अधिक प्रबल है । वाह्य पक्ष ने उसका श्रृंगार अवश्य किया है पर उसका सौन्दर्य आन्तरिक पक्ष के सौन्दर्य के समक्ष गौण बन गया है ।

जायसी प्रेम-प्रधान कवि हैं। प्रेम ही उनकी काव्य-कला का आधार है और प्रेम के स्वरूपो का चित्रण करने मे ही उन्होने अपनी सपूर्ण प्रतिभा का उपयोग किया है। उनकी प्रेम की अनुभूतियाँ बडी परमोज्ज्वल है। उनकी अनुभूतियो मे मानव-हृदय की व्यापकता और सरसता है। उन्होने प्रेम को उसके भीतर प्रविष्ट होकर देखा है। उनके शब्दो मे, उनकी भाषा मे प्रेम बोलता है। उनकी प्रेम की पीडा बडी गम्भीर पीडा है। वह मनुष्य को ऊपर उठाती है और उसके हृदय मे पवित्र भावनाओ का सचार करती है। उसमे कर्तव्य है, त्याग है, कष्ट सहिष्णुता है, पुरुषार्थ है, तन्मयता है और तीव्रता है उसे देख कर, उसकी कथाओ को सुनकर मनुष्य ही नही, पक्षी भी आँसू बहाते है। सबसे बडी विशेष बात तो यह है कि उनकी 'प्रेम की पीर' लौकिक न होकर अलौकिक है। वह परोक्ष के रूप मे एक अपरोक्ष सत्ता और सौंदर्य को बडी कुशलता के साथ सामने उपस्थित करती है।

जायसी की अनुभूतियाँ बडी प्रखर है। वे बडे भावुक थे। उन्होने भावुकता के साँचे मे अपनी अनुभूतियो को खरादकर अधिक दिव्य बना दिया है। उन्होने दृश्यो का चित्रण भी बडी सफलता के साथ किया है। प्रकृति के विविध रूपो के चित्रण से पद्मावत भरा पडा है। प्रकृति का सम्बन्ध भी उन्होने मानव-हृदय से स्थापित किया है। बारहो महीनो मे प्रकृति का कैसा प्रभाव मानव-हृदय के ऊपर पडता है और उसके प्रभाव से मानव-हृदय के भीतर किस-किस प्रकार के भाव उठते है, इसकी पूर्ण अनुभूति उनके बारहमासो के चित्रण में मिलती है। उन्होने प्रकृति के साथ मानव हृदय का प्रशंसनीय रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है।

जायसी की काव्य-कला मे मानव जीवन के सम्पूर्ण रूपो को स्थान नही मिल सका है। उसमे जीवन की अनेकता नही है। यद्यपि वह मानव-हृदय को स्पर्श करती है पर उसमें मानव हृदय के केवल एक ही भाव की प्रधानता है, और वह है प्रेम। प्रेम के युगल स्वरूपो—संयोग और वियोग—का ही उसमे चित्रण है। श्रृङ्गार प्रेम का सहचर है। अतः जायसी के पद्मावत मे श्रृङ्गार रस की प्रधानता है। श्रृङ्गार मे केवल 'रति' को ही उन्होने प्रमुखता दी है। श्रृङ्गार के शेष संचारी और स्थायी भावों की पद्मावत मे न्यूनता है।

भाषा और शैली—जायसी की भाषा बडी सरस और मधुर है। भाषा

ठेठ अवधी है। जायसी ने अपनी भाषा मे अवधी के दोनो रूपों—पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी—का प्रयोग किया है। पर पूर्वी अवधी से वे अधिक प्रभावित जान पडते है क्योकि उनकी रचनाओ मे पूर्वी अवधी के ही शब्द अधिक मिलते है। उन्होने पूर्वी अवधी की विभक्तियों और क्रियाओ से बहुत अधिक काम लिया है। ऐसे शब्दो का प्रयोग भी उनकी रचनाओ मे मिलता है जो अप्रचलित थे। अप्रचलित शब्दो के प्रयोग के ही कारण उनकी भाषा मे शिथिलता उत्पन्न होगई है और उसकी संबद्धता नष्ट हो गई है।

किंतु इसका यह तात्पर्य नही है कि जायसी ने सर्वत्र पूर्वी अवधी के ही रुपो से काम लिया है। उन्होने तुलसीदास जी के समान पश्चिमी अवधी के लिंग-वचनो का भी प्रयोग किया है, उन्होने अपनी रचनाओ मे 'मै' या तै' के स्थान पर 'तुई' का प्रयोग अधिक किया है जो कनौजी और पश्चिमी अवधी का ही रूप है।

जायसी की भाषा बोलचाल की और बहुत सीधी-सादी है। उसमे सामासिक पदो का व्यवहार बहुत कम मिलता है। दो से अधिक पदो के समास कही नही है। समासो मे अधिकतर तत्पुरुष समास का ही प्रयोग मिलता है। उन्होने समास का प्रयोग संकेत की शैली से न करके फारसी की शैली से किया है। भाषा में माधुर्य और सरसत: है। उसमे स्वाभाविकता और सहजता की छटा भी है। वह प्रचालित लोक भाषा के अन्तर्गत रह जाती है। यही कारण है कि उसमे साहित्यिकता का अभाव है।

जायसी की शैली अपनी शैली है। वह दो शैलियो से प्रभावित है। कुछ तो उस पर सूफी कवियो का प्रभाव पडा है और कुछ भारत के प्राचीन कवियो का। पर वह सर्वथा मौलिक है और उस पर जायसी के व्यक्तित्व की छाप है। वह बडी मधुर, सरस और हृदय-ग्राही है। दोहा और चौपाई जायसी के छंद है, सूक्तियो और उक्तियों का प्रयोग भी जायसी ने अपनी शैली मे किया है। सूक्तियो के प्रयोग के कारण उनकी शैली मे सरसता आगई है।

———



४ मीराँ बाई

जन्म संवत् १५६०
मृत्यु संवत् १६०२

परिचय—मीराँ का जन्म संवत् १५६० वि० के लगभग जोधपुर राज्यान्तर्गत कुडनी नामक गाँव मे हुआ था। उनके पिता का नाम रत्नसिंह और दादा का नाम राव दूदाजी था। राव दूदाजी को मेडता अपने पिता से जागीर स्वरूप प्राप्त हुआ था। मेडते मे ही उन्होने अपनी राजधानी बनाई थी। कुडनी उसी मेडते के अन्तर्गत है। रत्नसिह कुडनी मे ही रहते थे। कुडनी के अतिरिक्त ग्यारह दूसरे गाँव भी उन्हे अपने पिता से जागीर रूप मे प्राप्त हुए थे।

बाल्यावस्था मे ही मीराँ की माता का स्वर्गवास हो गया था। कुटुम्ब मे उनकी देख-रेख करने वाला कोई न था। अत: उनका पालन-पोपण मेडते मे राव दूदाजी की संरक्षता मे हुआ। राव दूदाजी वैष्णव थे। चतुर्भुज जी के प्रति उनके हृदय मे अधिक आस्था थी। राव दूदाजी के सपर्क मे रहने के कारण बाल्यावस्था मे ही मीराँ जी के हृदय मे भक्ति का अकुर अकुरित हो उठा था। उनके पदो से इस बात का भी पता लगता है कि बाल्यावस्था में ही 'गिरिधर गोपाल' के प्रति प्रीति पैदा होगई थी।

राव दूदाजी का जब स्वर्गवास हो गया तब उनके स्थान पर राव बीरमदेव जी राज सिहासन पर बैठे। राव बीरमदेव जी रतन सिंह के बड़े भाई थे। अब मीराँ जी का दायित्व वीरमदेव जी के कंधे पर आ पडा। मीराँ जी अब सयानी हो चुकी थी। अत. सवत् १५७३ मे राव बीरम देव ने उनका विवाह राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज जी के साथ कर दिया। पर

विवाह होने के साथ ही मीरॉ पर विपत्तियों के बादल टूट पडे। एक वर्ष के पश्चात ही उनके पति का स्वर्गवास हो गया और संवत् १५८४ में कनवाह के रण-क्षेत्र में उनके श्वसुर राणा साँगा भी वीर गति को प्राप्त हुए।

इन दोनो घटनाओ से मीराँ की भाग्य-दिशा बदल गई। वे एक प्रकार से आश्रय-विहीना बन गईं। इन दोनो घटनाओ का प्रभाव उनकी मानसिक स्थिति पर भी अत्यधिक रूप मे पडा। भक्ति का अंकुर उनके हृदय मे पहले से ही था। इन घटनाओं ने उनके हृदय मे वैराग्य की भावना भी उत्पन्न कर दी। वे ससार से विरक्त हो कर साधु सन्तो की सेवा मे ही रहने लगी और भजन-पूजन मे ही अपना समय व्यतीत करने लगी। कभी-कभी गिरिधर गोपाल के प्रेम मे वे इतनी विभोर हो जाती थी कि अपने को साधु-सतो के साथ मिला कर नाचने लगती थी। कभी-कभी हाथो मे करताल लेकर और परो मे घुँघरु बाँधकर वे साधु-सतो के सम्मुख भाव-नृत्य भी किया करती थी।

मीराँ का यह आचरण उनके देवर रत्नसिंह जी को अधिक अप्रिय लगता था। उन्होने इसके लिए मीराँ जी को बहुत समझाया-बुझाया पर मीरा जी के हृदय पर उनकी बातो का रच मात्र भी प्रभाव न पडा। कुछ दिनो के पश्चात् रत्नसिंह जी का स्वर्गवास होगया, और उनके स्थान पर विक्रमादित्य राणा हुए। विक्रमादित्य उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होने पहले तो मीराँ जी को समझाया-बुझाया, पर जब समझाने-बुझाने का कोई परिणाम न निकला तब वे कुपित होगए। उन्होने षडयन्त्र के द्वारा मीराँ जी को मार डालने का भी उपाय किया। कहा जाता है कि इसके लिए उन्होने मीराँ जी के पास एक पिटारे मे बन्द करके साँप भेजे। मीराँ जी ने भावावेश मे उन साँपो को जयमाल की तरह गले मे डाल लिया और उनका कुछ भी अपकार न हुआ। एक दूसरी बार राणा ने मीराँ जी के पास, शर्बत के रूप मे विष का प्याला भेजा। मीराँ जी उसे प्रभु का चरणामृत समझ कर पी गईं और हँसती रही। एक बार उनके लिए शूली की सेज का प्रबन्ध भी किया गया था। मीराँ जी उस सेज पर फूलो की शय्या की भाँति सुख और निश्चिन्तता से सोती रही।

पर इन अत्याचारो से मीराँ व्याकुल हो उठी। कहा जाता है कि इन्हीं दिनो उन्होने गोस्वामी तुलसीदास और रैदास जी को पत्र भी लिखा था, और

उस पत्र मे अपने कष्टो का चित्रण किया था, पर ऐतिहासिक घटनाओ और कालो से इस बात की अनुकूलता सिद्ध नही होती। मीराँ जी पर जब अधिक अत्याचार होने लगा तब उनके काका बीरमदेव जी ने उन्हे मेडता बुला लिया। पर मेडता मे भी मीराँ जी अधिक दिनो तक न रह सकी। संवत् १५६५ मे वे तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से वृन्दाबन चली गईं। वृन्दाबन मे उनकी जीव गोस्वामी से भेट हुई। जीव गोस्वामी चैतन्य सम्प्रदाय के सर्वमान्य भक्त थे।

कुछ दिनो तक वृन्दाबन मे रहने के पश्चात् मीराँ जी द्वारिका चली गईं और अपने प्रभु के चरणो मे श्रद्धांजलि अर्पित करने लगी। चित्तौर पर विपत्तियो के बादल छा गए और राणा ने उनसे भयभीत हो कर मीराँ जी को बुला लाने के लिए कुछ ब्राह्मण भेजे। उन ब्राह्मणो ने द्वारिका मे जाकर मीराँ जी को चित्तौर की कष्ट कहानियाँ सुनाईं और उनसे लौट चलने के लिए आग्रह किया। मीराँ जी ने उस आग्रह को स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि जब वे रणछोड जी से विदा माँगने के लिए उनके मंदिर मे गई तब 'हरि तुम हरो जन की पीर' पद गाते-गाते उनकी मूर्ति मे समाविष्ट हो गई। यह घटना संवत् १६०७ की बताई जाती है।

रचनाएँ—मीराँ जी एक अनन्य साधिका थी। श्रीकृष्ण भगवान के प्रेम और भक्ति मे ही उन्होने पद लिखे है। उनके द्वारा स्वतंत्र रूप से किसी विशेष ग्रंथ की रचना नही की गई है। उनके द्वारा रचे हुए बहुतसे स्फुट पद मिलते है जिनमे उनकी भक्ति और प्रेम सम्बन्धी उत्कट अनुभूतियाँ है। मीराँ जी के स्फुट पद गुजराती और राजस्थानी भाषा मे भी बहुत मिलते है। साधु-सतो और भक्तो की मंडली मे उनके बहुत से पद गाए जाते है। इन पदो मे बहुत से पद ऐसे हैं जिनमे साम्य नही है। यही कारण है कि आज मीराँ जी के पदों के जो सग्रह निकले है उनके पदो मे साम्य नही है। महामहोपाध्याय गौरी शकर ओझा जी ने परिश्रम करके 'राग गोबिंद' के नाम से मीराँ जी के पदो का संग्रह प्रकाशित किया है। मिश्र बंधुओं ने भी 'राग सोरठ संग्रह' के नाम से इसी प्रकार का प्रयत्न किया है। इनके अतिरिक्त मीराँ जी के पदो के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके है।

मीराँ जी की भक्ति—मीराँ भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य आराधिका थी। उनके शरीर और मन पर श्रीकृष्ण के ही प्रेम का रग छाया हुआ था। उनकी भक्ति का स्वरूप क्या था और उसका विकास किस प्रकार हुआ, इस बात को जानने के लिए मीराँ जी के पदो की ओर देखना होगा। मीराँ जी के पदो का अध्ययन जब हम करते है तब हम उनमे दो प्रकार की भावनाएँ पाते है। एक प्रकार की भावनाएँ तो वे है जिनमे कष्ट-कथाओ का चित्रण है, और दूसरे प्रकार की भावनाएँ वे है जिनमे अनुराग की धारा प्रवाहित हो रही है। मीराँ जी ने जहाँ कष्ट-कथाओ का चित्रण किया है वहाँ उन मे वैराग्य प्रतिपादित होता है। मीराँ जी की भक्ति का यह प्रारम्भिक स्वरूप है, क्योंकि उनके प्रारम्भिक पदो मे ही इस प्रकार की भावनाओ का विकास हुआ है। इससे स्पष्ट है कि मीराँ जी की प्रारंभिक भक्ति कबीर इत्यादि निर्गुणवादी संतो के प्रभाव से प्रभावित है। पर मीराँ जी की भक्ति का यह स्वरूप आदि अधिक दिनो तक स्थिर न रह सका। वे निर्गुण मार्ग पर कुछ ही दूर चल पाई थी कि बडी तीव्रता के साथ सगुण मार्ग पर लौट आईं और भक्ति भाव से परिपूर्ण हो कर गिरिधर गोपाल की भक्ति मे जुट गईं। मीराँ जी की इस भक्ति मे प्रेम की प्रधानता है। उनका प्रेम बडा ही मधुर और हृदयस्पर्शी है। उसमे संयोग और वियोग दोनो की ही उत्कट भावनाएँ विद्यमान है। कही मीराँ गोपी बनी हुई है तो कही गोकुल की अहीरिणी। इस प्रकार उन्होने अपनी अनुभूति को अधिक से अधिक निकट-वर्तिनी बनाने का प्रयत्न किया है।

मीराँ की सगुण भक्ति बडी विस्तृत है। वह उतनी विस्तृत है जितनी निर्गुण। कहना तो यह चाहिए कि निर्गुण मीराँ जी की भक्ति सगुण मे ही समाविष्ट है। मीराँ जी सगुण और निर्गुण में किसी प्रकार का भेद-भाव नही करती। उनकी भक्ति में सर्वोत्तम रूप से दोनो का ही सामंजस्य मिलता है।

मीराँ जी किस सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता क्योंकि किसी विशेष सम्प्रदाय की ओर न तो उनकी आसक्ति है और न किसी से उनकी विरक्ति है। अपनी भक्ति के प्रारम्भिक काल मे वे सभी प्रकार के सन्तो से मिला-जुला करती थी पर उनके

मधुर और प्रेम भाव मे 'सख्य चैतन्य' के मधुर भाव की प्रधानता मिलती है। मीराँ जी ने अपने पदो मे कही भी श्रीकृष्ण के साथ राधिका का उल्लेख नही किया है। मीराँ जी राधिका और गोपिकाओं मे अन्तर नही मानती थी। उनके लिए राधिका गोपी को छोडकर और कोई नही है। मीराँ जी ने अपने को भी पूर्व जन्म की एक गोपी ही बताया है। गोपी के ही रूप मे उन्होने गिरिधर गोपाल की आराधना की है। वे गिरिधर गोपाल को ही अपना प्रियतम मानती है। उन्होने अपने इस भाव को अपने सम्बोधनो द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि मे इस संसार मे गिरिधर गोपाल को छोडकर और कोई दूसरा पुरुष नही है।

मीराँ जी की प्रेम-साधना बडी उत्कृष्ट है। उसमे त्याग है, विह्वलता है। उसमे वेदना है और आनन्द भी है। उसमें सयोग और वियोग—प्रेम के दोनो ही स्वरूपो की अनुभूतियाँ मिलती है। उनका सयोग और वियोग केवल एकांगी ही नही, सीमित भी है। वे श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझती है, उन्ही को भजती है और उन्ही से अपना दुख-सुख कहती है। वे अपने दुख मे, अपने प्रेम की वेदना मे किसी को भी अपने साथ नही रखती। वे ससार से दूर एकांकी विरह के गीत गाती है। अपने और श्रीकृष्ण के बीच मे किसी का होना उन्हे प्रिय नही है। यही कारण है कि वे प्रकृति से भी दूर है। उनकी आह मे, उनकी पीडा मे प्रकृति उनसे दूर पर खडी हुई है। उन्हे किसी वस्तु की इच्छा भी नही है। यहाँ तक कि वे मोक्ष भी नही चाहती। वे केवल एक धर्म-परायण सती नारी की भाँति अपने 'गिरिधर' को चाहती है और उन्ही के चरणो पर अपना सर्वस्व निछावर कर देती है।

मीराँ जी के प्रेम मे एक साध्वी स्त्री के हृदय की लज्जा और मर्यादा है। वे अपने 'गिरिधर' से सीमा और मर्यादा के भीतर रहकर बात करती है। उनके प्रेम और शृङ्गार मे सीमा का कही भी उल्लघन नही हुआ है। वे एक मुग्धा की भाँति है जो प्रेम के क्षेत्र मे प्रेम को छोडकर और कुछ जानती ही नही। उनका चरित्र, उनका व्यक्तित्व प्रभाव पूर्ण प्रेम से परिपुष्ट है। वह उतना उत्कृष्ट है कि हृदय की तन्त्री को झनझना देता है। मीराँ जी के हृदय से कविता के रूप मे पदो के जो स्रोत फूटे है वे उसी उत्कृष्ट प्रेम के परिणाम है।

वर्ण्य-विषय—मीराँ जी के हृदय मे जो अनुभूतियाँ प्रगट हुई है वे पदो के रूप मे है। मीराँ जी प्रथम कवियित्री है जिन्होने मुक्त-पदो मे गीति-रचना की है। हिन्दी मे मीराँ जी के पूर्व मुक्त-पदो में गीति-रचना किसी के द्वारा नही हो सकी है। मीराँ जी के सम्पूर्ण पदो मे राग-रागिनियो का विकास भी हुआ है। मीराँ जी राग-रागिनियो की आचार्या थीं या नही, इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से कुछ नही कहा जा सकता। पर उन्होने विभिन्न राग-रागिनियो मे आत्म-विवेचन बड़ी कुशलता के साथ व्यक्त किया है। उनकी अभिव्यक्ति के आलम्बन गिरिधर गोपाल है। उन्होने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ मधुर भावनाओ से प्रेरित होकर 'गिरिधर गोपाल' को ही आलम्बन मानकर लिखी है। उनकी रचनाएँ वर्ण्य-विषय की दृष्टि से पाँच भागो मे विभाजित की जा सकती है—विनय और प्रार्थना के पद, रूप सम्बन्धी पद, जीवन पर प्रकाश डालने वाले पद, वियोग और प्रेम सम्बन्धी पद और रहस्यवादी पद।

मीराँ जी के विनय और प्रार्थना के पदो मे दैन्य-भाव का विकास हुआ है। इन पदो में उन्होने बार-बार भगवान की दीन बन्धुता का स्मरण किया है। रूप सम्बन्धी पदो में भगवान के रूप का चित्रण करके उसे हृदय मे बसाने की इच्छा प्रगट की गई है। जीवन सम्बन्धी पदो मे स्वजन, सनेहियो और सम्बन्धियो से मतभेद का उल्लेख है। मीराँ जी के पदो में उनके प्रेम और विरह सम्बन्धी पद बडे उत्कृष्ट है। इन्ही पदो के कारण मीराँ जी को काव्य-क्षेत्र में सुख्याति प्राप्त हो सकी है। यह पद बड़े ही चुटीले और प्रभावपूर्ण है। इनमे हृदय की विह्वलता और विभोरता के सुन्दर चित्र मिलते है। उनमे स्वाभाविकता के साथ ही साथ आत्म-समर्पण की भावना का विकास हुआ है। रहस्यवादी पदो मे उनकी उस भक्ति का दर्शन होता है जो भक्ति की ओर उन्मुख है। उनके इन पदो पर स्पष्ट रूप से 'कबीर' इत्यादि निर्गुण सन्तो की वाणियो का प्रभाव है।

मीराँ की काव्य-कला—मीराँ जी का आविर्भाव भक्तिकाल मे हुआ था। मीराँ जी के पूर्व हिन्दी मे कुछ ऐसे संत कवियो का आविर्भाव हो चुका था जो अपनी वाणी की सुधा से हिन्दी के तरु-पल्लवो को अभिषिक्त कर चुके थे।

उन सन्त कवियो की वाणियो की समीक्षा करने से यह पता चलता है कि मीराँ जी के पूर्व हिन्दी मे ज्ञान, भक्ति और प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही थी । मीराँ जी का आविर्भाव जब हुआ तब उन्होने अपने को एक ऐसे क्षेत्र मे पाया जिसके चारो ओर भक्ति, ज्ञान और प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही थी । मीराँ जी के हृदय को भी इस धारा ने परिप्लुत कर दिया । अतः कहना ही पड़ेगा कि मीराँ जी की रचनाओ मे भक्ति, प्रेम और ज्ञान की ज्योति है ।

अन्यान्य कवियो की भाँति मीराँ जी के काव्य की समीक्षा भी दो दृष्टिकोणों को सामने रखकर करनी चाहिए । वे दृष्टिकोण है वाह्य और आन्तरिक । पहले हम आन्तरिक दृष्टिकोण को ही लेंगे । आन्तरिक दृष्टिकोण से मेरा तात्पर्य मीराँ की अनुभूतियो से है । मीराँ जी की अनुभूतियाँ बडी स्वाभाविक और तीव्रगामिनी है । उनमे तन्मयता और विभोरता है । वे हृदय को स्पर्श करने मे बडी पटु है । उनमे अलौकिकता और भाव-स्थापन की कुशलता है । उनकी प्रेम और विरह सम्बन्धी अनुभूतियाँ बडी उत्कृष्ट है । उन्होने अपनी कल्पना के नायक श्रीकृष्ण को बडे ही निकट से देखा है । श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय मे विरह की जो वेदना है वह सच्ची वेदना है । मीराँ अपनी वेदना के चित्रो का अंकन करने मे अपने को मिटा देती है । उनके प्रेम और वियोग सम्बन्धी चित्रो मे हृदय की जो विभोरता और तन्मयता पाई जाती है वह अन्यत्र बहुत कम दृष्टिगोचर होती है ।

वाह्य दृष्टिकोण में अलंकार, रस और छन्द इत्यादि आते हैं । मीराँ जी के पदों में अलंकारों की अपेक्षा रस की उद्‌भावना विशेष रूप से हुई है । उनका ध्यान चमत्कारिकता की ओर न होकर 'हृदय की पीर' की ओर ही विशेष रूप में रहा है । यही कारण है कि उनकी रचनाओं में अलंकारों के वैचित्र्य का अभाव है; फिर भी रूपक के दृष्टान्त उनकी रचनाओं में अधिक मिलते हैं । रूपक के अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, विभावना, अर्थान्तरन्यास, वीप्सा, और अनुप्रास इत्यादि अलंकारों का विधान उनकी रचनाओं में हुआ है । रसों में शृंगार रस ही मीराँ का प्रधान रस है । शृंगार रस के दोनों ही रूप—संयोग

और वियोग उनकी रचनाओ मे मिलते है। उनके शृंगार के आलम्ब श्रीकृष्ण हैं। उनका शृंगार बडा ही संयमित और मर्यादापूर्ण है।

मीराँ जी कवियित्री न होकर एक आराधिका थी। उनका आराधिका का रूप प्रथम और कवियित्री का रूप उसके पश्चात् का है। यही कारण है कि उनके पदो मे एक कवि की रचनाओ की भाँति न तो अलंकारो की छटा है और न रसो का प्रवाह। मीराँ जी का ध्यान अलंकारो और रसो की ओर न होकर आन्तरिक भावनाओ की ही ओर विशेष रूप से था। यही कारण है कि उनकी रचनाओ मे आन्तरिक अनुभूतियो का ही अधिक प्रस्फुटन हुआ है। अलकारो और रसो की भाँति छन्दो की योजना का भी मीराँ जी के पदो मे अभाव है। उनके पदो मे जो छन्द-विधान है उसकी योजना पिंगल के नियमो के अनुसार नही है। मीराँ जी के सभी पद गेय है। उन्होने अपने पदो को स्वर, ताल और लय मे बाँध कर उन्हे गीति के रूप में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है। पदो को स्वर, ताल और लय मे बाँधने के कारण उनमे मात्राओ का न्यूनाधिक्य अधिक मिलता है, पर फिर भी उनकी संगीतात्मकता मे किसी प्रकार का अवरोध नही उपस्थित होता।

भाषा और शैली—मीराँ जी की भाषा अधिक सरल और सुबोध है। छन्द और अलंकारो की भाँति ही चमत्कार की दृष्टि से मीराँ जी की भाषा मे कोई प्रगल्भता नही है। उन्होने सीधी-सादी भाषा मे ही अपनी अनुभूतियो को संजोया है। पर उनकी सीधी-सादी भाषा बडी मर्मस्पर्शिनी और प्रभावपूर्ण है। वह हृदय को पकडती है और उस पर अपनी छाप बडी पटुता के साथ डालती है। उनके शब्दो मे सजीवता और कुशलता है। शब्दो के स्थापन मे व्यवस्था और भिन्नता का भाव है। प्रत्येक शब्द भावो को खोलता और कुछ बोलता-सा प्रतीत होता है।

मीराँ जी की भाषा का स्वरूप एक-सा नही है। उनके बहुत से पदों में राजस्थानी भाषा का स्वरूप है, जिस पर डिंगल का प्रभाव है। उनके कुछ ऐसे भी पद है जिनमे ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। कुछ पदो मे गुजराती, पूर्वी,

पजाबी और फारसी इत्यादि भाषाओं के शब्दो का संमिश्रण है। खडी बोली की विभक्तियो का प्रयोग भी अन्नत उनके पदो मे मिलता है।

मीराँजी की शैली गीति-काव्य की शैली है। मीराँ जी इस शैली की हिन्दी मे प्रथम कवियित्री है। उन्हे ही इस शैली को हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे जन्म देने का श्रेय प्राप्त है। उनकी यह शैली बडो मधुर, सरस और प्राणमय है। उसमे सगीतात्मकता का निर्वाह सुन्दरता के साथ हुआ है।

५ गोस्वामी तुलसीदास

जन्म संवत् १५८९
मृत्यु संवत् १६८०

परिचय—गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म सवत् १५८९ के आस-पास राजापुर मे हुआ था। किसी-किसी का कथन है कि गोस्वामी जी का जन्म सोरो मे हुआ था, और वे इसके के लिए प्रमाण भी उपस्थित करते है; किन्तु विद्वानो ने अधिक अनुसधान के पश्चात् उनका जन्मस्थान राजापुर मे ही माना है। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे और उनका गोत्र पाराशर था। जन-श्रुति है कि गोस्वामी तुलसीदास जी बाल्यावस्था मे अपने माता-पिता द्वारा परित्यक्त कर दिये गए थे। इसका कारण लोग यह बताते है कि उनका जन्म एक ऐसे नक्षत्र मे हुआ था जो उनके माता-पिता के लिए अमंगलकारी था। यह भी कहा जाता है कि उनका पालन-पोषण मुनियाँ नाम की एक परिचारिका ने किया था और उसने उनका नाम रामबोला रखा था। जो हो, पर इतना तो सत्य है कि तुलसीदास जी को बाल्यास्था मे उदर-पोषण के लिए बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा था। उन्होंने अपनी कवितावली मे उन कनिठाइयो का चित्र बडी मार्मिकता के साथ उपस्थित किया है।

तुलसीदास को अपने उदर-पोषण के लिए इधर-उधर परिभ्रमण करना पडा था। संयोगत. उनकी भेट नरहरिदास जी से हुई जो अनन्य रामभक्त थे। उन्होने सर्वप्रथम नरहरिदास जी से ही श्री रामचन्द्र की कथा सुनी, जिसका उनके हृदय पर अत्यधिक प्रभाव पडा। वे इसके पूर्व से ही हनुमान जी की उपासना किया करते थे। वे नरहरिदास के पास कई वर्षो तक रहे और उनसे संस्कृत पढते रहे, तत्पश्चात् वे काशी चले गए। वहाँ उन्होने विधि

पूर्वक वेदो और शास्त्रो का अध्ययन किया। फिर राजापुर चले गए और दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। रत्नावली के रूप ने उन्हे अपने मे तन्मय कर लिया और वे सब कुछ भूल गए। एक दिन उनकी यह रूप तन्मयता रत्नावली के इन स्वरो से भंग हुई और उनके हृदय मे वास्तविकता का चित्र अंकित हो उठा—

अस्थि-चर्म मय देह मम, तामै जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तब भव भीति॥

रत्नावली की इस ज्ञानपूर्ण वाणी से गोस्वामी जी की आत्मा झनझना उठी और वे संन्यासी हो गये। सर्वप्रथम वे काशी गये। काशी मे उन्होने वेदो, पुरानो और शास्त्रो का मंथन किया : फिर अयोध्या चले गए। अयोध्या मे ही उन्होने अपने विश्व-विश्रुत महाकाव्य 'रामायण' का लिखना प्रारम्भ किया। कुछ दिनो के पश्चात् वे पुन काशी चले गए और प्रह्लाद घाट पर रहने लगे। यही उन्होने अपना 'रामचरितमानस' समाप्त किया। यही उन्होने विनय-पत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न और कवितावली इत्यादि ग्रन्थो की भी रचना की। संवत् १६८० मे असीघाट में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे निम्नांकित दोहा अधिक प्रसिद्ध है :—

सवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तजि शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामी तुलसीदास जी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। उनके सबध मे कई किंवदंतियाँ कही जाती है। कहा नही जा सकता कि उन किंवदतियाँ मे कितना सार है, पर यह तो सत्य ही है कि गोस्वामी जी मे महान् शक्तियाँ थी।

रचनाएँ—गोस्वामी जी भक्त थे, साधक थे और महाकवि थे। उनकी भक्ति और साधना ने ही सिमट कर काव्य का रूप धारण कर लिया है। उन्होने भक्ति रस से परिपूर्ण कई काव्य-ग्रन्थो की रचना की है, जिनके नाम इस प्रकार है—(१) रामचरित मानस, (२) विनय पत्रिका, (३) दोहावली, (४) कवितावली, (५) गीतावली, (६) रामाज्ञा प्रश्न, (७) वैराग्य संदीपनी, (८) पार्वती

मंगल, (९) रामलला नहछू, (१०) बरवै रामायण, (११) कृष्ण गीतावली और (१२) जानकी मंगल।

तुलसी की भक्ति-पद्धति—गोस्वामी तुलसीदास जी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। भक्ति ही उनके जीवन का अवलम्ब थी। तुलसीदास जी की भक्ति की वास्तविकता को ठीक-ठीक समझने के लिए उनके पूर्व के भक्ति-इतिहास पर दृष्टि डालना अनिवार्य है। तुलसीदासजी के पूर्व रामानन्द और बल्लभाचार्य जी का जन्म हो चुका था। उनके प्रयत्नो से भक्ति-रस जनता मे प्रवाहित हो रहा था। भक्ति-रस की यह धारा भागवत की विचार-लहरो से परिपूर्ण थी। एक ओर भक्ति-रस की यह सगुण धारा प्रवाहित हो रही थी और दूसरी ओर निर्गुण-वाद की धारा बह रही थी, जो विदेशी विचारो से प्रभावित थी। निर्गुणवाद की यह धारा जायसी, कबीर और कुतुबन इत्यादि मुसलमान कवियो की वाणी से बहुत ही प्रोत्साहित हुई, किंतु भारतीय परंपरा के विरुद्ध होने के कारण भारतीय समाज पर उसका अधिक प्रभाव न पडा और कुछ दूर अग्रसर होकर के ही वह मरुस्थल की धारा की भाँति सूख गई।

प्रथम वर्ग की सगुणवादी धारा भारतीय परपरा के अनुसार थी। उसमे वेद और शास्त्रो की मर्यादा और उसके आचार-विचारों के तत्त्व थे। उसका स्वरूप लोक रजक और लोकधर्म-रक्षक था। उसमे दुःख और निराशा के लिए स्थान न था। इसके विपरीत उसमे अधःपतितो को ऊँचा उठाने की भावना थी। अतः यह धारा बडे वेग से भारतीय समाज मे प्रवाहित हुई और उसने समाज के हृदय को अपने अमृतोपम जल से आप्लावित कर दिया। सूर और तुलसी इसी सगुणवादी धारा के भक्त थे।

गोस्वामी तुलसीदास के 'राम' परब्रह्म परमात्मा के अवतार थे। वे सगुण भी थे और निर्गुण भी थे। गोस्वामीजी ने सगुण मे ही निर्गुण की कल्पना की थी। वे सगुण और निर्गुण मे किसी प्रकार का भेद नही मानते थे। यही कारण है कि उन्होने अपनी भक्ति मे भक्ति के इन दोनो स्वरूपो को ही स्थान उनकी भक्ति की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह लोक रंजक और लोकधर्म रक्षक है। वह व्यक्ति की ओर न जाकर सदैव समाज और लोक की ओर

उन्मुख रहती है। उसमे शील है, सौन्दर्य है, उसमे शक्ति है और कर्म है। उसका लक्ष्य है लोक कल्याण। वह लोक कल्याण के लिए, धर्म और सत्य की रक्षा के लिए युद्ध की प्रेरणा उत्पन्न करती है। वह जन-जन से विश्व की ओर बढ़ती है और सम्पूर्ण विश्व मे एक ही 'राम' का अनुभव करती है। फिर भी वह मर्यादा का परित्याग नही करती। मर्यादा की रक्षा के लिए ही वह वर्णाश्रम धर्म को मानती है। वर्णाश्रम धर्म को मानते हुए भी वह उपासना के क्षेत्र मे जाति-पाँति को व्यर्थ समझती है। उसके निकट सब मे समता है, बधुता है। उसे सबके कल्याण की चिन्ता है। वह न तो मोक्ष के लिए विकल है और न उसमे निर्वाण के लिए आकुलता है। उसकी आकुलता लोक-कल्याण के लिए है, लोकधर्म-रक्षा के लिए है।

तुलसीदास की भक्ति लोक कल्याण की ही भावना पर आधारित है। उन्होने ज्ञान मार्ग का कहीं खडन नही किया, पर भक्ति मार्ग पर ही अधिक जोर दिया है। भक्ति मार्ग में भी उन्हे दास्यभाव अधिक रुचिकर है। जहाँ कहीं भक्ति का प्रसग आया है उन्होने दास्य-भाव की भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया है। इसी प्रकार उन्होने निर्गुणवाद का भी कही खंडन नही किया है। पर भक्ति के प्रसग मे वे राम के सगुण रूप पर ही अधिक जोर देते है। उनकी भक्ति मे दास्यभाव की प्रचुरता है। इसलिए वह भगवान के ऐश्वर्य का बार-बार स्मरण करती है। वह अपने राम के तीन रूपो पर निछावर है। वे तीन रूप है—क्षमावान रूप, शरणागत वत्सल रूप और करुणायतन रूप। तुलसीदास जी की भक्ति भगवान के इन्ही रूपो का बार बार स्मरण और अभिनन्दन करती है। तुलसीदास जी का सपूर्ण रामचरित मानस श्री रामचन्द्र जी के इन्हीं त्रय रूपों के स्मरण और अभिनंदन से भरा पड़ा है। गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति श्री रामचन्द्र जी के ऐश्वर्य को ही ग्रहण कर के उठती है और उसी की छाया में उसका पूर्ण विकास भी हुआ है। तुलसीदास जी की भक्ति में शील, सौन्दर्य और शक्ति का पूर्ण विकास हुआ है। दूसरे शब्दों में तुलसी के भक्ति के तीन सोपान हैं। तुलसीदासजी की भक्ति इन्हीं तीनों सोपानों पर होती हुई सर्वोच्चता की ओर अग्रसर हो रही है। उनकी दृष्टि में श्री रामचन्द्र जी सौन्दर्य के आगार, शील के सागर और शक्ति के [illegible]

वह श्री रामचन्द्र जी के सौन्दर्य में लोकपालन की शक्ति का अनुभव करती है। इसी प्रकार वह उनके शील मे लोकरजन तथा उनकी शक्ति मे उद्भव और लय की अखड शक्ति का पूर्ण आभास पाती है। वह उनके इन्ही रूपो पर उत्सर्ग है और भावोद्रेक मे वाणी के रूप मे फूटकर उनका पग पग पर अभिनन्दन करती है।

तुलसी की काव्य-संपदा—गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी के महाकवि है। उन्होने काव्य के क्षेत्र मे अमर कीर्ति प्राप्त की है। अन्यान्य कवियो की भाँति उनके भी काव्य के दो स्वरूप है—वाह्य और आन्तरिक। काव्य के वाह्य स्वरुप मे भाषा, छंद और अलंकार इत्यादि आते है। काव्य का आंतरिक स्वरुप वह है जिसे काव्य की आत्मा कह सकते है। गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य का वाह्य और आंतरिक—दोनो ही स्वरुप अधिक प्रबल है। काव्य के दोनो ही स्वरुपो का सौष्ठव उनकी रचनाओ मे पूर्ण मात्रा मे पाया जाता है।

गोस्वामी जी भक्त कवि है। उनकी कविता का आधार भक्ति की विह्वलता है। उनकी कविताओ के शब्द-शब्द मे उनकी वह आत्मा विराजमान है जो राम की भक्ति मे राममय हो गई है। उनकी रचनाओ मे जो तन्मयता है, जो सलग्नता है, वह इसी का परिणाम है। उन्होने राम-भक्ति के सरोवर मे डूब करके ही अपने काव्य की रचना की है। जिस प्रकार उनकी भक्ति पवित्र है, जिस प्रकार उनके राम का चरित्र पतित-पावन है, उसी प्रकार उनकी कविता भी पतितपावनी और लोक-कल्याणकारिणी है। उनकी कविताओ का उद्देश्य लोक का कल्याण है। उन्होने अपने सुख के लिए, अपनी आत्मा की सतृप्ति के लिए काव्य रचना नही की है। उनका ध्यान समाज की ओर है। इसीलिए हम उन्हे समाज और लोक का प्रतिनिधि कवि कहते है। प्रतिनिधि कवि इसलिए कहते हैं कि उन्होने समाज और लोक-मर्यादाओ की रक्षा की है। रक्षा ही नही की है वरन् उसके आचार-विचारो का नाना युक्तियो द्वारा समर्थन किया है और उन्हे आकर्षक रुप प्रदान करके अनुकरणीय भी बना दिया है। उनका ध्यान पूर्ण रुप से समाज और लोक की ओर है। वे समाज और लोक के भीतर नैतिक आदर्शों की स्थापना के लिए अधिक विकल है। उन्होने अपने

रामचरित मानस के प्रत्येक पात्र मे नैतिक चरित्र की स्थापना की है। उनका प्रत्येक पात्र नैतिकता, त्याग तथा कर्त्तव्य का पक्षपाती है।

तुलसीदास जी के भावो मे बडी मनोरमता और पवित्रता है। उहोने जहाँ जिस भाव का चित्रण किया है बडी अपूर्वता के साथ किया है। भक्त होने के कारण उनमे अधिक तन्मयता है। अपनी तन्मयता मे ही वे मानव-हृदय के अतस्तल मे पैठ सके है और उसके भीतर से मुक्ता निकाल कर बाहर रखने मे समर्थ हो सके है। मानव हृदय के समस्त भावो पर उनका एकाधिपत्य है। वे प्रेम से भी पूर्ण परिचित है और कठोरता से भी। वे अनुराग को भी जानते है और वैराग्य को भी। सयोग से भी उनकी निकटता है और परिचित है मानव-हृदय मे उठने वाले सपूर्ण भावो से। उनकी भावानुभूति बडी प्रबल और क्षमताशालिनी है। भावो का चित्र अंकित करने मे वे अधिक कुशल है। उन्होने जहाँ जिस भाव का चित्रण किया है वहाँ उसका एक रुप-सा खडा कर दिया है। उनके भाव रुपो मे न कही अल्पता की उदासीनता है, और न कही अतिरेकता की अनर्गलता। उनके भावो का व्यापार बडा ही सयत और मर्यादापूर्ण है। उनके भावो को प्रगट करने वाले शब्द बडे निपुण है। वे बोलते-से जान पडते है। उनकी शालीनता, उनकी गम्भीरता और उनकी सयमता अनुकरणीय ह। उनमे शक्ति है, ओज है और मर्यादा है।

गोस्वामी जी का मानव-हृदय पर पूर्ण अधिपत्य है। उन्होंने मानव-हृदय के संपूर्ण भावों का अभिव्यंजन किया है। उनकी वाणी किसी विशेष रस पर आधारित नहीं है। मानव-हृदय में जितने प्रकार के रसों का उद्रेक हो सकता है उनकी रचनाओं में वे सभी रस पूर्ण मात्रा में प्राप्त होते हैं। आचार्यों ने काव्य के अंतर्गत ९ रसों की कल्पना की है—शृंगार, अद्भुत, भयानक, बीभत्स, रौद्र, हास्य, वीर, वात्सल्य और करुणा। गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरित मानस सभी रसों का भण्डार है। इन समस्त रसों के संचारी और स्थायी भावों का भी उनकी रचनाओं में पूर्ण विकास हुआ है। उन्होंने जिस रस की जहाँ धारा बहाई है वहाँ उसका एक रुप-सा खड़ा कर दिया है। उनके रसों का प्रवाह सचमुच एक महाकवि के हृदय के रसों का प्रवाह है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की

रचना की है। उनका प्रबन्ध-काव्य रामचरित मानस काव्य की दृष्टि मे जितना अपूर्व है उतना ही कथा की दृष्टि से भी मनोरम है। उनके रामचरित मानस मे कथा का पूर्ण विकास हुआ है। आदि से लेकर अन्त तक कथा का प्रवाह अक्षुण्ण रहता है। उसका वेग कही भी शिथिल होता हुआ दृष्टिगोचर नही होता। उन्होने अपनी मूल कथा मे बीच-बीच मे बहुत-सी घटनाओ और उपकथाओ का भी सन्निवेश किया है, पर यह सन्निवेश इतनी स्वाभाविकता और कुशलता के साथ किया गया है कि वह मूल कथा का ही एक अग बन गए है। मूल कथा मे घटनाओ और उपकथाओ का सन्निवेश करते हुए गोस्वामी जी मूल कथा को भूल नही जाते। उनकी दृष्टि मे मूल कथा की प्रधानता और उसका महत्व सर्वत्र प्रमुख रूप मे रहता है। वे सहसा किसी घटना का सम्बन्ध अपनी मूल कथा के साथ नही स्थापित कर देते। उन्हे जब ऐसा करना होता है तब वे बडी निपुणता के साथ अपनी मूल कथा के उत्तर और पूर्व भाग के तारतम्य को स्थापित करते है।

गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रबन्ध-काव्य सभी गुणो से संयुक्त है। कथा, संवाद और चरित्र-चित्रण प्रत्येक दृष्टि से वह अनुपम है। जिस प्रकार उसमे कथा का अटूट प्रवाह है, उसी प्रकार उसमे संवाद और कथनोपकथन की स्वाभाविकता है। उनके सभी संवादो मे नाटकीय कला का प्रचुर विकास हुआ है। उनके कथनोपकथन समय और परिस्थिति के अनुसार है तथा उनमे अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए तीव्रता है। उनके सभी चरित्र आदर्श जगत के है जो बडी ही कुशलता और मौलिकता के साथ आपस मे बातचीत करते है। संयम और मर्यादा उनके चरित्रो का लक्ष्य है। चरित्रो के चित्रण मे उन्होने बडी पटुता दिखाई है। उन्होने केवल आदर्श चरित्र ही उपस्थित नही किये है, वरन् ऐसे भी चरित्र उपस्थित किये है जो निम्नकोटि के बहुत ही साधारण है, पर इन साधारण कोटि के चरित्रो के उपस्थित करने मे भी उनका उद्देश्य महान् है। अतः उनमे भी महानता आ गई है।

गोस्वामी तुलसीदास जी वर्णन मे बडे कुशल है। उन्होने अपने रामचरित मानस मे अनेको स्थितियो, अनेक मानवी वृत्तियो और उनके मानव स्वरूपो का वर्णन किया है। वे प्रकृति और मानव दोनो के ही मार्मिक पारखी है।

जिस प्रकार प्रकृति के विविध स्वरूपो को उन्होने देखा है उसी प्रकार मानव के विविध स्वरूपो का भी उन्हे ज्ञान है। रामचरित मानस मे विभिन्न स्थलो में प्रकृति का जो मनोहर चित्रण किया है उससे उनकी विज्ञता प्रकट होती है। वे प्रकृति के वाह्य स्वरूपो को ही देखकर शान्त नही हो जाते। वे उसके भीतर भी प्रवेश करते है और उसमे उस सौंदर्य का दर्शन करते है जो अक्षय है, अलौकिक है। वे प्रकृति को मानव-जीवन से पृथक् नही समझते। प्रकृति और मानव-जीवन तथा उसकी परिस्थितियो के वे पूर्ण पारखी है। मानव के मन की संपूर्ण कृतियो का उन्होने रामचरित मानस मे चित्रण किया है।

गोस्वामी जी के काव्य का वाह्य स्वरूप भी अधिक व्यापक और आकर्षक है। उन्होने अपनी रचनाओ मे विविध छन्दो का प्रयोग किया है। चौपाई और दोहे मे उन्हे सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनके रामचरित मानस मे चौपाई और दोहे ही सबसे अधिक मिलते है। चौपाई और दोहो के अतिरिक्त उन्होने सोरठा, चौपैया, तोमर, त्रिभंगी, हरिगीतिका, इन्द्रवज्रा, वसंततिलका, वशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी और भुजगप्रयात इत्यादि छन्दो का भी प्रयोग किया है। उन्होने ऐसे ही छन्दो का अधिक प्रयोग किया है जो गीतात्मक है। 'गीतावली' और 'विनय पत्रिका' के उनके गीत बहुत प्रिय है। अलकारो की योजना भी उनकी बहुत श्रेष्ठ है। उनके रामचरित मानस मे प्रायः सभी प्रकार के अलकारो के उदाहरण मिलते है। 'बरवै रामायण' की रचना केवल अलकारो के लिए ही हुई है। उनकी उपमाएँ और रूपक बडे अद्वितीय है। सांगोपांग रूपक का चित्र उन्होने बडी ही मार्मिकता के साथ खीचा है।

तुलसीदास की भाषा—गोस्वामी तुलसीदास जी भाषा के पण्डित है। उन्होने अपनी रचनाओ मे दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है—एक अवधी और दूसरी ब्रज। पर इन भाषाओ की शुद्धता और उनके लालित्य की ओर उनका ध्यान बिलकुल नही जान पडता। भाषा सौष्ठव की अपेक्षा उनका ध्यान भाव की ओर अधिक है। यही कारण है कि उन्होने भाषा के परिमार्जन और उसकी शुद्धता मे अधिक समय नही लगाया। जहाँ जो उपयुक्त शब्द प्राप्त हुए

है, उन्होने उन्हे ले लिये है। शब्दो के निर्वाचन और संगठन मे उन्होने केवल इसी बात का ध्यान रक्खा है कि उनके गृहीत शब्द उनके भावो को प्रकट करने मे अधिक सहायक सिद्ध हो सके। उन्होने यद्यपि सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया है पर उनकी भाषा कई भाषाओं को स्पर्श करती है। उन्होंने कई भाषाओ से कहावते और मुहाविरे लेकर उनका अपनी भाषा मे उचित और उपयुक्त प्रयोग किया है। उनके रामचरित मानस की भाषा पश्चिमी अवधी है। जानकी मंगल और पार्वती मगल मे पूर्वी अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। गीतावली, दोहावली, कवितावली, श्रीकृष्ण गीतावली और विनय पत्रिका की भाषा ब्रजभाषा है। रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड के आदि मे सस्कृत के श्लोक है। उन्होने अपनी अवधी मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक संख्या मे किया है। सस्कृत के तत्सम शब्दो की प्रचुरता के कारण उनकी अवधी अधिक सरस और कोमल होगई है। सस्कृत के तत्सम शब्दो के अतिरिक्त उनकी भाषा मे भोजपुरी, गुजराती, बंगाली, मराठी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओ के शब्द भी मिलते है। उन्होने कही-कही खडी बोली की क्रियाओ का भी प्रयोग किया है। सस्कृत की विभक्तियाँ, सर्वनाम, क्रिया विशेषण उनकी भाषा मे मिलते है। उन्होने अनेक नई क्रियाओ का निर्माण भी किया है, जैसे—उपदेसेउ, रागे और आदरिये इत्यादि। इन क्रियाओ के कारण उनकी भाषा अत्यधिक अभिव्यंजक होगई है। उन्होने अपनी भाषा को सस्कृत का स्वरूप देने के लिए सयुक्ताक्षरो और अनुस्वारो का भी अधिक प्रयोग किया है। सैकडों रूढ़िवादी प्रयोग भी उनकी भाषा मे मिलते है, पर नवीन प्रयोगो की सख्या भी कम नही है। अरबी और फारसी के शब्दो का प्रयोग भी गोस्वामी जी की भाषा में अधिक मिलता है।

भाषा पर गोस्वामी जी का पूर्ण अधिकार है। उन्होने विभिन्न भाषाओ से उपयुक्त शब्द लेकर अपनी भाषा को अधिक प्राणमय बना दिया है। उनकी भाषा मे सबसे अधिक अभिव्यजन की शक्ति है। वे अवधी और ब्रज दोनो पर पूर्ण अधिकार रखते है। उनके रामचरित मानस मे अवधी का पूर्ण विकास हुआ है। इसी प्रकार कवितावली और विनय पत्रिका मे उनकी ब्रजभाषा सरसता और सुकुमारता से ओत-प्रोत है। उनकी अवधी और ब्रज दोनो ही

भाषाएं बडी परिमार्जित और सुगठित है। शब्दो का गठन बडा ही स्वाभाविक और अनुकूल है। कहा एक भी ऐसा शब्द नही है जो पाद पूर्ति के लिए रक्खा हुआ जान पडता है। उनके सभी शब्द उनके आन्तरिक भावो के अनुकूल है। उनके शब्दो मे बहुत बडी ध्वन्यात्मकता है।

तुलसीदास की शैली—गोस्वामी तुलसीदास जी अपने युग के प्रतिनिधि कवि है। उनका भाव और भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यद्यपि उनकी भाषा अवधी है, पर उन्होने अपने युग मे प्रचलित सभी भाषाओ से उपयुक्त शब्द लिए है। उन्होने उन समस्त छन्दो मे रचनाएँ की है। जो उनसे पूर्व हिन्दी काव्य-जगत मे प्रचलित थे। उन्होने अपने काव्यो मे उन समस्त शैलियो का भी प्रयोग किया है, जो उनसे पूर्व हिन्दी काव्य-जगत मे प्रचलित थी। उन्होने अपने युग की सम्पूर्ण शैलियो मे रचना करके यह सिद्ध कर दिया है कि उनमें काव्य-रचना की अपूर्व शक्ति है। उन्होने चन्द की छप्पय, कबीर की दोहा, सूर की पद और गीत, जायसी की दोहा और चौपाई, रीतिकारो की कवित्त-सवैया, रहीम की बरवै और ग्रामीणो की सोहर इत्यादि शैलियो मे काव्य-रचना करके अपनी अपूर्व काव्य प्रतिमा का परिचय दिया है। उनकी सभी शैलियाँ अत्यधिक स्वाभाविक और भावाभिव्यजना से परिपूर्ण है।

उनकी प्रत्येक शैली उनकी अपनी शैली जान पडती है। उन्होने अपने युग की प्रत्येक शैली को अपना बना लिया है और उस पर अपनी मौलिकता की छाप डाल दी है। उनकी प्रत्येक शैली उनकी विद्वत्ता और उनकी गम्भीरता के आवरण मे छिपी हुई है। उन्होने अपने प्रत्येक ग्रन्थ में नई-नई शैली का प्रयोग किया है। उनका रामचरित मानस विभिन्न शैलियो का भंडार है। उनकी विभिन्न शैलियो का विकास उनके एक ग्रन्थ मे ही पूर्णरूप से हो चुका है। 'रामचरित मानस' मे दोहा और चौपाई की शैली का सुन्दर विकास हुआ है। 'विनय पत्रिका' की रचना गीति शैली मे हुई है। 'कवितावली' सवैया शैली में है। 'दोहावली' मे दोहा शैली का विकास हुआ है। इन समस्त शैलियो मे तुलसीदास जी को अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई है।

सूर और तुलसी—गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास

हिन्दी साहित्य के महाकवि है। दोनो की अमर कृतियो से हिन्दी साहित्य का अनुपम शृ गार हुआ है और दोनो की ही कविता का आधार भक्ति है। दोनो के ही हृदय मे आशा है, विश्वास है। दोनो ही अपने-अपने आराध्य के प्रेम और भक्ति मे निमग्न है। एक के आराध्य श्रीराम है और दूसरे के आराध्य श्रीकृष्ण है। यद्यपि दोनो के आराध्यो के नाम भिन्न-भिन्न है, पर भागवत के मतानुसार श्रीराम और श्रीकृष्ण मे कोई अन्तर नही है। भागवत के मतानुसार गोस्वामी तुलसीदास के 'राम' ही सूर के 'कृष्ण' है। अत गोस्वामी तुलसीदास और सूर दोनो ही भागवत मतानुयायी है। दोनो ही विद्वान है और दोनो ही पंडित है। दोनो की ही रचनाएँ भक्ति-रस मे विभोर है। दोनो ही भाव के पुजारी है। पर दोनो की भक्ति के स्वरूप मे बडा अन्तर है। गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति मे दास्यभाव की प्रधानता है, और सूरदास जी की भक्ति मे सख्यभाव की। गोस्वामी तुलसीदास जी अपने राम के सम्मुख दीन भाव से उपस्थित होते है और सूरदास जी अपने कृष्ण के सम्मुख बन्धुभाव से। सूरदास अपने श्रीकृष्ण को डाटते और फटकारते है, पर गोस्वामी तुलसीदास आँखो में प्रेम का जल भरके ही मौन रह जाते है। सूरदास जी की भक्ति मे लौकिकता के लिए स्थान नही है। वह केवल व्यष्टि से सम्बन्ध रखती है। उसमे जो प्रेम है, उसमे जो तल्लीनता है वह व्यष्टि तक ही रह जाती है। वह केवल अपने आप मे ही डूबी रहती है। पर गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति मे लौकिकता के लिए स्थान है। सच पूछिए तो वह लोक-कल्याण के लिए ही है। उसमे व्यष्टि का कोई अस्तित्व नही। उसका ध्यान सदैव समष्टि की ही ओर रहता है। वह जिन 'राम' का चिन्तन करती है, वे लोक-कल्याण की मूर्ति है। मर्यादा और कर्त्तव्य पालन ही उनके जीवन का ध्येय है। वे धर्म और सत्य की रक्षा के लिए अन्यायियो से युद्ध करते है और उन्हे दड देते है। वे शान्ति और धर्म के विकास के लिए बन-बन भटकते है और विपत्तियो से युद्ध करते है। वे शक्ति सम्पन्न है। उनमे अपार शील और सौन्दर्य है। वे अपनी ओर बिलकुल नही देखते। उनका ध्यान सदैव लोक की ही ओर रहता है। उनके व्यक्तित्व मे विश्व की सारी परिस्थितियाँ, मानव की सम्पूर्ण सद्वृत्तियाँ समाविष्ट है। यद्यपि सूर के कृष्ण राम की ही भाँति आदर्शो के पुंज है, शक्ति सम्पन्न है, और लोक-कल्याण की

ओर उनका भी ध्यान है, पर सूरदास जी की भक्ति श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन पर नहीं रीझती। वह उनके जीवन के केवल एक भाग पर—प्रेम और वात्सल्य पर ही रीझती है। वह उनके प्रेम और वात्सल्य का ही गुणानुवाद करती है।

तुलसीदास और सूरदास जी की भक्ति मे जो अन्तर है, वही उनकी रचना मे भी अन्तर है। तुलसीदास जी की रचनाएँ सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती है। मानव-जीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियो और प्रवृत्तियो का उनके काव्यो मे चित्रण है। उनके काव्य का ध्येय है लोक-कल्याण। उन्होने केवल लीला के लिए लीला का गान नही किया है। उनके सम्मुख जन है, समाज है, राष्ट्र है, संस्कृति है, और विश्व है। वे जन-जन मे मर्यादा और आदर्श स्थापित करना चाहते है। उन्हे अपनी मुक्ति और अपने निर्वाण की चिन्ता नहीं है। उन्हे चिन्ता है अपने समाज की, अपने राष्ट्र की और अपनी संस्कृति की। उनकी भक्ति, उनकी साधना, उनकी आराधना और उनका काव्य, सब कुछ राष्ट्र के लिए है, समाज के लिए है और है सस्कृति तथा सभ्यता के उद्धार के लिए। उनकी दृष्टि राजनीति और राष्ट्र की अर्थनीति की ओर भी है। उन्हें राजा और प्रजा के कर्त्तव्यो की भी चिन्ता है। वे पारिवारिक समस्याओ को भी सुलझाते है। पर सूरदास की रचनाएँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रो की ओर बिलकुल झाँकती तक नही। वे केवल प्रेम और वात्सल्य के क्षेत्र मे ही अपना चमत्कार प्रकट करके रह जाती है। उनमे केवल श्री कृष्ण की बाल-लीलाओ और प्रेम लीलाओ का ही वर्णन है। इसका कारण सूर और तुलसी का विभिन्न दृष्टिकोण है। तुलसी का दृष्टिकोण श्री राम के पावन चरित्र द्वारा लोक मे मर्यादा, कल्याण, शांति, शालीनता और विश्व-बधुत्व की स्थापना करना है और सूर का दृष्टिकोण केवल कृष्ण के बाल-सौंदर्य पर रीझकर उसका चित्रण करना है। उसका जो भी परिणाम हो, उसकी सूर को बिलकुल चिंता नही। उनकी 'रचनाएँ कला कला के लिए' के सिद्धांत पर पूर्ण रूप से अवलम्बित है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न रूपो मे हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। वे भक्त भी है ओर साधक भी है, कवि भी है और दार्शनिक भी है, सुधारक भी है और विवेचक भी है, उपदेशक भी है और नेता भी है। वे अपने सभी रूपो मे अद्वितीय है। उन्हें प्रत्येक क्षेत्र मे अपूर्व सफलता प्राप्त

हुई है । प्रत्येक क्षेत्र मे वे मौलिक दृष्टिगोचर होते है । उनमें लोक-नायकत्व की अपूर्व शक्ति है । उन्होने प्रत्येक क्षेत्र मे प्रभावपूर्ण नायकत्व की स्थापना की है । उधर सूरदास भक्त कवि और कुछ शो में दार्शनिक ही होकर रह जाते है । सूरदासजी की भक्ति बडी शक्तिशालिनी है । वह अपने सम्मुख किसी दूसरे स्वरूप को स्वीकार ही नही करती । वह केवल एक रूप में तन्मय रह है। उसे जीवन के दूसरे स्वरूप रुचते ही नही ।

तुलसीदासजी ने प्रबन्ध काव्य की रचना की है । उनका रामचरित मानस हिन्दी का सुप्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य है । पर सूरदासजी ने स्वतन्त्र रूप से किसी प्रबन्ध-काव्य की रचना नही की । यद्यपि तुलसीदासजी की भाँति उन्होने भी कथात्मक काव्य की रचना की है पर उनकी कथा प्रबन्ध-काव्यो की कथा की भाँति शृंखलित नही है । सूरदासजी का ध्यान प्रबन्ध काव्य की रचना की ओर नही जान पडता । इसमे कोई सन्देह नही कि सूरदास मे प्रबन्ध-काव्य-रचना की अपूर्व शक्ति है । पर वे स्फुट पदो मे ही विभोर दृष्टिगोचर होते है । प्रबन्ध-काव्य की रचना करने के कारण गोस्वामी तुलसीदास जी मे कई ऐसी विशेषताएँ है, जो सूरदासजी मे नही है । तुलसीदासीजी ने अपने काव्य मे सभी रसो को स्थान दिया है । उनके रामचरित मानस में नौरसो का एक सागर-सा बहता हुआ दृष्टिगोचर होता है । प्रत्येक रस पर तुलसीदास जी का पूर्ण आधिपत्य है । उनके काव्यो मे जो रसाभास हुआ है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने प्रत्येक रस का बहुत ही निकट से परिचय प्राप्त किया है । यद्यपि सूरदासजी ने शांत, वीर, हास्य, करुणा, भयानक, अद्भुत, शृंगार और वात्सल्य इत्यादि रसो के चित्र अंकित किए हैं, पर उनकी जितनी ममता वात्सल्य और शृंगार पर है उतनी और रसो पर नही है । सूरदास वात्सल्य और शृङ्गार के सम्राट है । वात्सल्य और शृङ्गार की योजना सूर की रचनाओ मे बडी मनोहरता के साथ हुई है । सूरदास जी का काव्य गीतात्मक है । अत· उसमे वर्णनो का भी अभाव है । यद्यपि उन्होने श्रीकृष्ण की लीला के सम्बन्ध मे विभिन्न उत्सवो, समारोहो, रूपो और प्रकृति के स्थलो का चित्रण किया है, पर तुलसी के वर्णनो के समक्ष उनके वर्णनो मे अल्पज्ञता दृष्टिगोचर होती है । इसका कारण यह है कि तुलसीदास जी ने प्रबन्ध-काव्य की रचना की है । यदि उनके काव्य

मे वर्णनो की विभिन्नता न होती तो उनका काव्य प्रबन्ध काव्य के गुणो से पूर्ण ही न होता उनके काव्य मे जीवन की सभी परिस्थितियो, दशाओ, रूपों और मनोवृत्तियो का वर्णन है। प्रकृति के विभिन्न रूो के चित्रण से भी उनका काव्य अलकृत है।



६ नरोत्तमदास

जन्म संवत् १५५०
मृत्यु संवत् अज्ञात

परिचय—हिन्दी काव्य मे नरोत्तमदास जी का प्रमुख स्थान है। यद्यपि उन्होने ऐसा कोई काव्य-ग्रन्थ नही लिखा है जो आकार मे अधिक बडा हो और जिसमें काव्य के उन्नत गुणो का समावेश हो, पर इसमे सदेह नही कि उन्होने जो कुछ लिखा है हृदय और प्राण के साथ लिखा है। उनका 'सुदामा चरित' हिन्दी काव्य जगत मे एक अनूठा खड काव्य है। इस छोटे-से खंड काव्य ने ही उन्हे हिन्दी के काव्य जगत मे अमर बना दिया है।

नरोत्तमदास जी के सम्बंध मे अभी तक बहुत कम ज्ञात हो सका है। कहा जाता है कि वे सीतापुर जिले के बाडी नामक गॉव के निवासी थे और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ इस सबध में कुछ भी पता नही चलता। 'शिवसिह सरोज' मे उनके सम्बन्ध मे इस बात का उल्लेख है कि वे १६०२ में जीवित थे। उनकी रचनाओ में सुदामा चरित, ध्रुव-चरित और विचार माला है। प० रामनरेश त्रिपाठी ने अन्वेषण करके यह निश्चय किया है, कि 'सुदामा चरित' का रचना काल सं० १५८२ है। 'ध्रुव चरित' अप्राप्य है।

नरोत्तमदास जी की मृत्यु के सम्बन्ध में भी अभी तक कुछ ज्ञात नही हो सका है।

काव्य सौष्ठव—नरोत्तमदास जी की कीर्ति का कारण उनका सुदामा चरित है। सुदामा चरित में ही उनकी वह काव्य सम्पदा विद्यमान है जिसने उन्हे हिन्दी के काव्य जगत में अमरता प्रदान की है। 'सुदामा चरित' एक खड काव्य है, उसमें श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता का वर्णन बड़ी ही मनोहरता

के साथ किया गया है। श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता की कथा अधिक प्रसिद्ध है। कथा का सर्वाधिक महत्व सुदामा की दीनता और श्रीकृष्ण की दया से है। कथा मे एक ओर सुदामा की दीनता है और दूसरी ओर श्रीकृष्ण की अनुपम दया। दोनो के मध्य मे सुदामा और श्रीकृष्ण की मित्रता का आदर्श है जो अपने ढग का अद्वितीय है।

कथा की दृष्टि से सुदामा चरित एक अनुपम खंड काव्य है। यद्यपि कथा बहुत ही छोटी-सी है पर बडी अनुपम है। उसका प्रत्येक भाग मानव के उच्च गुणो और आदर्शों से भरा हुआ है। उसके द्वारा समाज, जीवन और राष्ट्र को एक अनुपम सदेश मिलता है। नरोत्तमदास जी ने बडी कुशलता के साथ कथा को काव्य के सूत्र मे गूँथा है। कथा बचपन में पाठशाला के जीवन से आरम्भ होती है। श्रीकृष्ण और सुदामा सांदीपन गुरु के आश्रम मे एक साथ ही पढते हैं। सुदामा दीन हीन ब्राह्मण के लडके है और श्रीकृष्ण एक सत्त्वाधिकारी के बालक। फिर भी दोनो मे अनुपम मैत्री हो जाती है जो अधिक स्वाभाविक है। आश्रम से निकलने के पश्चात् दोनो ही मित्र अपने-अपने जीवन सग्राम में व्यस्त हो जाते है। श्रीकृष्ण द्वारिका के राजा बनते है और सुदामा दीन हीन ब्राह्मण के रूप में अपनी जीविका चलाते है। उनका जीवन अभाव और दीनता से पूर्ण है। सुदामा की स्त्री इस दीनता से आकुल होकर सुदामा जी को उनके मित्र द्वारिकाधीश का स्मरण कराती है और उन्हे आग्रहपूर्वक द्वारिका भेजती है। द्वारिका में भगवान श्रीकृष्ण बडे प्रेम से सुदामा से मिलते है और उनके भेंट के चावलो को चाबते हैं तथा उन्हे अपाकी बना देते है।

कथा बडी स्वाभाविक और सरल है। स्वाभाविकता उसमे प्रत्येक स्थान मे विद्यमान है। वह ज्यो-ज्यो आगे बढती है त्यो-त्यो अधिक प्रभावशालिनी होती जाती है। कथा का विकास बडी सुन्दरता और स्वाभाविकता के साथ हुआ है। अपने विकास-मार्ग मे वह कही भी शिथिल और प्रभावहीन नही दिखाई देती, इसके प्रतिकूल बीच बीच मे वह अधिक हृदय-स्पर्शिनी बन गई है। उसका आदि जैसा सुखमय और शान्तिमय है वैसा ही अन्त भी है। कथा का अन्त सुख, उल्लास और हर्ष की स्थिति मे हुआ है।

पात्रो की दृष्टि से सुदामा चरित एक आदर्श खण्ड काव्य है। इसके तीन

पात्र है—सुदामा, सुदामा की स्त्री और श्रीकृष्ण। सुदामा एक दीन हीन ब्राह्मण है। वे शान्त, सयमी और तपोनिष्ठ है। वे सच्चे ब्राह्मण है। वे तप और भगवान के नाम को ही जीवन का सच्चा धर्म समझते है। वे गरीबी और दीनता को जीवन का अभिशाप नही मानते। उनके हृदय मे स्वाभिमान और एक सच्चे ब्राह्मण की ज्योति है। और की तो बात ही क्या वे भगवान के द्वार पर भी जाकर 'कनावडे' नही बनना चाहते। पर अन्त मे पत्नी के आग्रह से सदु ख उन्हें विवश होकर झुकना ही पडता है और 'जो न कहो करियो तो बडो दुख' के रूप में अपने हृदय की विवशता प्रगट करके द्वारिका के लिए प्रस्थित हो जाते है।

सुदामा का चरित्र आदर्श है। उसके द्वारा मानव हृदय को बल मिलता है। सुदामा की स्त्री का भी चरित्र कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। यद्यपि उसमें वह उच्चता नही है जो सुदामा के चरित्र में है पर वह अपने रूप मे अधिक स्वाभाविक है। उसमे दीनता से व्याकुल एक स्त्री के हृदय की स्वाभाविकता अपनी पूर्णता के साथ विद्यमान है। तीसरा चरित्र श्रीकृष्ण का है जो दया के भंडार है। दीन-हीन सुदामा के प्रति अपनी मित्रता का पालन करके श्रीकृष्ण ने मित्रता का एक अनुपम आदर्श स्थापित किया है। इस प्रकार सुदामा चरित आदि से लेकर अन्त तक आदर्श खण्ड काव्य है। उसकी काया और उसके सभी पात्र आदर्श चित्र सामने उपस्थित करते है।

'सुदामा चरित' का काव्य और कला का दृष्टिकोण भी अनुपम है। उसका बाह्य और आन्तरिक दोनो ही पक्ष अधिक प्रबल और सजीव है। उसमे स्थान-स्थान पर भावो का स्रोत-सा बहता हुआ दृष्टिगोचर होता है। उसके भाव-चित्र बडे ही अनुपम और अद्वितीय है। भाव-चित्रो मे हृदय की स्वाभाविकता अपनी पूर्ण छटा के साथ दिखाई देती है। ऐसा लगता है जैसे किसी कुशल चितेरे ने उनका अकन किया हो। नरोत्तमदास जी सचमुच अन्तर्जगत के एक कुशल चितरे थे। उन्होंने अपने और अपनी पत्नी के हृदय मे प्रविष्ट होकर जिस प्रकार भावो के चित्र उतारे है उसे देखकर यह मानना ही पडता है कि वे एक कुशल चितेरे थे। एक ओर जहाँ उनके रूप मे एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण के हृदय का 'भाग्यवाद' और स्वाभिमान है वहाँ दूसरी ओर उनकी पत्नी के रूप मे नारी के हृदय को

दुर्बलताएँ और आकांक्षाएँ नृत्य कर रही है। दोनो में ही मनोवैज्ञानिकता और रोचकता है।

सुदामा चरित का कला पक्ष भी अधिक प्रबल और आकर्षक है। आदि से अन्त तक उसमे करुण रस का अच्छा सचार हुआ है। कही-कही तो वह इतना प्रभावपूर्ण है कि बरबस हृदय को बॉध लेता है। करुण रस की प्रभावपूर्णता ही के कारण 'सुदामा चरित' अधिक लोकप्रिय बन सका है। उसकी विशेषताओं में सबसे बडी विशेषता उसकी करुणात्मकता है। सुदामा की पत्नी के हृदय के उद्गारो के रूप मे उसमे स्थान-स्थान पर करुणा मुखरित हो उठी है। कही-कही हास परिहास और व्यंग्य की झलक भी सुदामा चरित मे मिलती है।

भाषा और शैली—सुदामा चरित की भाषा और शैली बडी ओजस्विनी तथा प्रवाहमय है। उसकी प्रवाहमयता दर्शनीय है। भाषा की प्रवाहमयता के कारण ही वह हृदय को अधिक स्पर्श करता है। भाषा अधिक सरल और प्रसाद गुण युक्त है। सरलता और प्रवाहमयता के कारण उसमे सजीवता, सरसता और सुन्दरता भी उत्पन्न हो गई है। उसके प्रत्येक शब्द सरल और उपयुक्त है। शब्दो के स्थापन मे स्वाभाविकता और सुन्दरता है। कही-कही लोकोक्तियो और प्रचलित मुहाविरो का भी उसमे प्रयोग हुआ है।

'सुदामा चरित' की भाषा ब्रज है पर उसमे बैसवाडे की बोली के शब्द भी कहीं-कहीं मिलते है। नरोत्तमदास जी ने शब्दों के प्रयोग मे स्वतन्त्रता से काम लिया है। उन्होने शब्दो का प्रयोग अपनी इच्छा के अनुसार तोड-मोड के किया है। पर इसके कारण उनकी भाषा की प्रवाहमयता और स्वाभाविकता मे कही भी अभाव उपस्थित नहीं हुआ है।

'सुदामा चरित' का निर्माण नाट्य शैली के आधार पर हुआ है। आदि से लेकर अन्त तक इसी शैली का अनुसरण किया गया है। नरोत्तमदास जी को इसमे सफलता भी प्राप्त हुई है। नाट्य शैली का प्राण उसका कथनोपकथन है। नरोत्तमदास जी का कथनोपकथन बडा ही स्वाभाविक और संयत है। कथोपकथन की स्वाभाविकता और सरलता के कारण उनकी शैली

अधिक स्वाभाविक, सरल, सरस और व्यंजक बन गई है। उसमे मनोवैज्ञानिकता, भावुकता और रसात्मकता का भी समावेश है।

'सुदामा चरित' मे अलकारो का जमघट विशेष रूप से नही पाया जाता। इसका कारण यह है कि उसके प्रणेता की रुचि कविता के बाह्य अगो की ओर विशेष रूप से न होकर आन्तरिक अंगो की ही ओर रही है। सुदामा चरित के रचियता ने अपनी कवि दृष्टि अधिकतर भावो पर ही केन्द्रित रक्खी है फिर भी उनकी रचना मे कही-कही उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा इत्यादि अलंकार देखने को मिल जाते है।

सुदामा चरित मे छन्द दोहा, कुण्डलियाँ, सवैया और कवित्त है।



७ नन्ददास

जन्म संवत् १५९०
मृत्यु संवत् १६४०

परिचय—हिन्दी के प्राचीन कवियों में नंददास जी का प्रमुख स्थान है। पर इनका जन्म कहाँ और कब हुआ इस सम्बन्ध में विद्वानों में परस्पर अधिक मतभेद है। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर कुछ लोग इन्हें गोस्वामी तुलसीदास जी का भाई और सनाढ्य ब्राह्मण बतलाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि यह कनौजिया ब्राह्मण और गोस्वामी तुलसीदास के छोटे भाई थे। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में इस संबंध में एक वाक्यांश भी मिलता है :—

"सो नंददास तुलसीदास के छोटे भाई हुते।"

डाक्टर श्यामसुन्दर दास जी ने नंददास जी के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण खोज की है। उन्होंने खोज करके यह निश्चय किया है कि इनका जन्म संवत् १५९० के आस-पास हुआ था। उन्होंने ही इनका जन्म स्थान एटा जिले के रामपुर नामक गाँव में सिद्ध किया है। इनके पिता का नाम जीवाराम और चाचा का नाम आत्माराम था। आत्माराम के पुत्र का नाम तुलसीदास था जो अवस्था में नंददास जी से बड़े थे। पर वही तुलसीदास रामचरित मानस के रचयिता हैं, इस संबंध में विद्वानों में परस्पर अधिक मतभेद है।

नंददास जी के माता-पिता का स्वर्गवास उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। वे सोरों में अपनी दादी के पास रहा करते थे। सोरों में ही नरहरि नामक एक संस्कृत पंडित से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। काव्य और संगीत की ओर बाल्यावस्था से ही उनकी अति रुचि थी। नरहरि जी के संपर्क में आने पर उनकी काव्य रुचि का विकास हुआ और वे इस मार्ग पर अग्रसर हुए। सर्व

प्रथम नन्ददास जी के हृदय मे श्री रामचद्र जी की भक्ति का उद्रेक हुआ था। उनके प्रारम्भिक पदो से भी यही बात प्रगट होती है। इसका एक मात्र कारण यह है कि नरहरि जी, जो उनके गुरु थे, रामानदी सप्रदाय के विद्वान थे। उनके ही संपर्क मे रहने के कारण नन्ददास जी के हृदय में श्रीराम भक्ति का उद्रेक हुआ था।

कुछ दिनो के पश्चात् इनका भाव बदल गया और ये श्रीकृष्ण भगवान के अनन्य भक्त बन गए। इस सम्बन्ध मे 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' मे एक कहानी का उल्लेख है। उस कहानी के अनुसार एक बार नददास जी कुछ लोगो के साथ द्वारिका पुरी की यात्रा करने के लिए चले। जब मथुरा मे पहुँचे तो उनके साथ के लोग मथुरा मे रुक गए और नददास जी अकेले ही द्वारिका पुरी की ओर चल दिए। एक दिन उन्होंने मार्ग मे सिंहनद नामक ग्राम मे निवास किया। वहाँ एक खत्री स्त्री के रूप पर इतना मुग्ध हो गए कि द्वारिकापुरी जाना भूल कर उसके घर के आस पास चक्कर लगाने लगे। उस स्त्री के कुटुम्बी नददास जी से उसकी रक्षा करने के लिए उसे लेकर गोकुल चले गए। नददास जी भी उस के प्रेम मे उन्मत्त हो कर गोकुल जा पहुँचे। प्रेम की यह अनोखी कहानी फैलते फैलते विट्ठलनाथ जी के कानो मे पहुँची। उन्होने नददास जी को बुलाकर उपदेश दिए। इनके उपदेशो से नददास जी का मोह दूर हो गया, साथ ही उन्होने विट्ठलनाथ जी की शिष्यता भी स्वीकार करली।

विट्ठलनाथ जी पुष्टि मार्गी थे। इनसे दीक्षा लेने के कारण नददास जी भी पुष्टिमार्गी हो गए। अब उनके जीवन का ढाँचा बिलकुल बदल गया। अब वे राम भक्त से श्रीकृष्ण भक्त बन गए। अब वे दिन-रात पुष्टिमार्गी साधु-सतो के साथ रहने लगे और हरि चर्चा तथा कीर्तन मे अपना समय व्यतीत करने लगे। यहाँ उनकी प्रतिभा के लिए उपयुक्त क्षेत्र और वातावरण प्राप्त हुआ। काव्य और संगीत कला की ओर पहले से ही उनकी अभिरुचि थी। पुष्टिमार्गी भक्तो के भावनापूर्ण मधुर क्षेत्र मे उनकी अभिरुचि पल्लवित और पुष्पित होने लगी। वे काव्य रचना मे प्रवृत्त हुए। धीरे-धीरे उनके सुलालित पदों की ख्याति चारो ओर फैल गई। पुष्टिमार्गी भक्त सप्रदाय उनका एक स्थान बन गया। वे उसके

कवियो मे एक प्रमुख कवि गिने जाने लगे। 'अष्टछाप' की स्थापना होने पर उन्हे बडे आदर और गौरव के साथ उसमे सम्मिलित किया गया।

कहा जाता है कि नददास जी कुछ दिनो तक सूरदास जी के साथ गोवर्द्धन मे रहे। यह भी कहा जाता है कि उन्होने सूरदास जी के कहने से अपने गॉव मे 'कमला' नामक एक कन्या से विवाह किया था जिससे कृष्णदास नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। उन्होने अपने गॉव का नाम 'रामपुर' से बदल कर 'श्यामपुर' रक्खा था और 'श्यामसर' नामक एक तालाब भी बनवाया था। इस प्रकार कुछ दिनो तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने के पश्चात् वे पुनः गोवर्द्धन चले गये। गोवर्द्धन मे वे मानसी गगा के तट पर निवास करते थे। वही सवत् १६४० के आस-पास एक पीपल के पेड के पास, उनका स्वर्गवास हुआ।

नंददास जी ने कई ग्रन्थो की रचना की है जिनमे उनके कुछ ग्रन्थ अप्राप्य है। उनके प्राप्त ग्रन्थो के नाम इस प्रकार है :—रसमजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूप मजरी, मान मजरी, विरह मजरी, श्याम सगाई, रास पंचाध्यायी, रुकमिणी मगल, भँवर गीत, सिद्धांत पचाध्यायी, सुदामा चरित और दशमस्कध भाषा।

रचनाएँ—रस मंजरी की रचना तुलसी और जायसी की काव्य पद्धति पर हुई है। अनेकार्थ मंजरी उनका कोष संबंधी ग्रन्थ है। रूप मंजरी और विरह मंजरी भी दोहे और चौपाइयो मे है। मान मजरी भी अनेकार्थ मंजरी की कोटि का ग्रन्थ है। 'श्याम सगाई' का विषय उसके नाम से ही प्रगट है। इसमे राधा कृष्ण की सगाई का वर्णन है। 'रास पंचाध्यायी' नंददास जी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। उनकी वास्तविक कला का स्वरूप इसी कृति मे देखने को मिलता है। 'रुक्मिणी मंगल' पर गोस्वामी तुलसीदास जी के जानकी मंगल और पार्वती मंगल की छाप है। 'भॅवरगीत' मे उद्धव और गोपियो का संवाद है जो अत्यधिक भावपूर्ण और कलात्मक है। नंददास जी ने उद्धव और गोपियो के सवाद द्वारा अपने इस काव्य मे सगुण की निर्गुण पर विजय दिखाई है। उन्होने ज्ञान मार्ग का खंडन करते हुए प्रेम की महानता का अपूर्व

ढंग से चित्रण किया है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' और 'दशम स्कंध भाषा' साधारण कोटि की रचनाएँ है। 'सुदामा चरित' के संबंध में कहा जाता है कि यह उनका ग्रन्थ नही है।

भक्ति का स्वरूप—नंददास जी एक उत्कृष्ट भक्त थे। उनकी भक्ति दो-तीन रूपों मे आविर्भूत हुई है। पहले वे श्री रामचद्र जी के भक्त थे। श्री रामचन्द्र जी के भक्त के रूप े उन्होंने अपने प्रारम्भिक पदों में श्री रामचन्द्र और हनुमान की भक्ति विषयक भावनाएँ प्रगट की है। उनके इन पदो मे स्पष्ट दैन्य का विकास हुआ है। अत यह निसकोच रूप से कहा जा सकता है कि पहले उनकी भक्ति दास्य-भाव की ओर उन्मुख थी; किन्तु पुष्टिमार्ग मे दीक्षित होने के पश्चात् उनकी भक्ति का स्वरूप बदल गया। उस समय की उनकी रचनाओ की समीक्षा करने से उनमे भक्ति के तीन रूप प्राप्त होते है—वात्सल्य, सख्य और मधुर। उनकी भक्ति का वात्सल्य रूप शिथिल है। उसमे प्राण और गति की न्यूनता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास जी की रचनाओ को देख करके ही नददास जी ने अपनी वात्सल्य संबंधी रचनाएँ की है। 'वात्सल्य' की भाँति ही उनकी सख्य-भावना मे भी स्फूर्ति नही है। उनका मधुर भाव अधिक सुन्दर, परिष्कृत और प्राणमय है। वास्तव मे भक्ति का मधुर स्वरूप ही उन्हे अधिक प्रिय था। उनमे रसिकता और मधुरता अधिक थी। रसिकता और मधुरता के हो क्षेत्र मे बैठ कर उन्होंने अपने आराध्य की अर्चना की है। यही कारण है कि उनकी रचनाओ में रसिकता और मधुरता विशेष रूप से पाई जाती है। उन्होंने प्रेम और श्रृंगार का चित्रण बडी कुशलता के साथ किया है।

काव्य सौष्ठव—हिन्दी के भक्ति काल के कवियो मे नंददास जी का महत्वपूर्ण स्थान है। ये प्रकृत कवि थे। उनके हृदय में प्रकृत रूप से काव्य और सागीत कला विराजमान थी। इनका आविर्भाव भक्ति काल के उस युग में हुआ था जिसके नायक गोस्वामी तुलसीदास जी और सूरदास जी थे। एक ओर सूरदास जी की कृष्ण-भावनाएँ बिखरी हुई थी तो दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओ की जाह्नवी लोगो के हृदय को आप्लावित

कर रही थी। चारो ओर संगीत और काव्य कला का वातावरण था। नंददास जी की प्रतिभा के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण पहले से ही विद्यमान था। अत इसे अंकुरित और पल्लवित होने मे विलंब न लगा। उसने थोड़े ही दिनो मे अपनी सुगंध से सबको आकर्षित कर लिया और थोड़े ही दिनो मे अपना एक विशेष स्थान बना लिया। आज तो हिन्दी के भक्त कवियो मे नंददास जी का प्रमुख स्थान है। कृष्ण काव्य के रचयिताओं मे सूर के पश्चात् उन्ही का नाम अधिक आदर के साथ लिया जाता है।

काव्य का आधार—नंददास जी श्रीकृष्ण के भक्त थे। अतः इनकी रचनाओ का आधार श्रीकृष्ण चरित्र ही है। इनके संपूर्ण ग्रन्थो मे श्रीमद्-भागवत के विभिन्न प्रकरणो का सार है। इन्होने अपने संपूर्ण काव्यो की सामग्री श्रीमद्भागवत् से ही ली है पर उन कथाओ का उपयोग करने मे इन्होने स्वतन्त्रता से काम लिया है। कथाओ को काव्य की माला मे पिरोने मे इन्होने जो कलात्मकता दिखाई है वह अपने ढंग की अद्वितीय है।

नंददास जी पुष्टिमार्गी थे। वल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी इनके गुरु थे। पुष्टिमार्ग एक ऐसा मार्ग है जिसमे प्रेम और भक्ति के साथ ही साथ दर्शन के तत्वो का भी समावेश है। अतः नंददास जी की रचनाओं मे भी दार्शनिक प्रवृत्ति विराजमान है। इनका प्रेम तर्क-वितर्क से अनुमोदित है। उसमे भावावेश की कमी किन्तु पांडित्य की अधिकता है। वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तो के ऊपर ही उनका वह प्रेम स्थित है जो इनकी काव्य-कला का प्राण है।

काव्य के तत्व—नंददास जी के ग्रन्थो मे कितने काव्यात्मक तत्व है और उन्हे काव्य-रचना मे कितनी सफलता प्राप्त हुई है, इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे उनके काव्य-ग्रन्थो की समीक्षा करनी पड़ेगी। उनके काव्य-ग्रन्थो मे दो ही ग्रन्थ ऐसे है जिन्हे अधिक सुख्याति प्राप्त है। एक है रास पंचाध्यायी और दूसरा है भँवर गीत। रास पंचाध्यायी उनका सर्वोत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इनकी रचना श्रीमद्भागवत् की एक कथा के आधार पर हुई है। कथात्मक दृष्टि से रास पंचाध्यायी सैद्धान्तिक और भावना प्रधान काव्य है।

इसमे कथा के तत्वो का उतना विकास नही हुआ है जितना भावना के तत्वों का। कथा के विकास की ओर नंददास जी का ध्यान ही नहीं था। अत. कथा के तत्व दब गए है और सिद्धान्त तथा भावनाएँ ऊपर आ गई है। नंददास जी के सम्पूर्ण कथात्मक काव्य-ग्रन्थो मे कथा का क्षीण और दुर्बल स्वरूप ही देखने को मिलता है। यद्यपि नंददास जी को कथात्मक काव्य लिखने का एक व्यसन था पर उनके किसी भी काव्य-ग्रन्थ मे कथा का विकास नही हुआ है। वे कथाकार थे भी नहीं, वे थे एक अन्यतम कवि। अत. उनकी रचनाओ मे भावना और अनुभूति का प्रचुर-अंश होना ही चाहिए था।

'रास पंचाध्यायी' मे भी नंददास जी की भावनाएँ अंकित हो रही थीं। यद्यपि वह कथात्मक काव्य-ग्रन्थ है पर उसमे भावना की ही प्रबलता है। श्रृंगार रास पचाध्यायी का प्रमुख रस है। श्रृगार की अभिव्यंजना उसमे अद्भुत ढग से हुई है। श्रृंगार के दोनो ही तत्त्व अर्थात् सयोग और वियोग उसमे अद्भुत ढंग से प्रतिफलित हुए है। नंददास जी का सयोग और वियोग लौकिक न होकर अलौकिक है। उसमे एक ओर लौकिकता की मधुरता का आनद मिलता है और दूसरी ओर ब्रह्मानद का स्रोत फूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। लौकिकता मे अलौकिकता की सृष्टि नददास जी ने बडी अपूर्वता के साथ की है। पर इस सृष्टि से कही भी उनके काव्य मे नीरसता नही आने पाई है। उनके काव्य की सबसे बडी विशेषता यही है कि वह दार्शनिक होते हुए भी अधिक सरस और मधुर है।

भँवर गीत की कथा भी श्रीमद्भागवत् से ही ली गई है पर इसमे वह माधुर्य नही है जो रास पंचाध्यायी मे है। यद्यपि यह भी कथात्मक काव्य है किन्तु कथा का रंचमात्र भी विकास नहीं हुआ है। 'भँवर गीत' की कथा अपने जिस माधुर्य के लिए अधिक प्रसिद्ध है उसका भी इसमें अभाव है। इनका एकमात्र कारण यह है कि अपने इस ग्रन्थ मे नंददास जी अपेक्षाकृत अधिक तार्किक बन गए हैं। वे इस काव्य-ग्रन्थ मे हृदय को पूर्ण रूप से भूल कर मस्तिष्क के साथ ही चलते हुए दृष्टिगोचर होते है। काव्य के आरभ मे ही तर्क-वितर्क प्रारम्भ हो जाता है और वह अंत तक चलता रहता है। किस

प्रकार सगुण की निर्गुण पर विजय स्थापित करे, यही चिंता भँवर गीत मे आदि से लेकर अन्त तक दिखाई देती है। परिणाम स्वरूप उसमे हृदय का अंश कम और मस्तिष्क का अंश अधिक है।

भाषा और शैली—हम लिख चुके है कि नंददास जी का आविर्भाव उस समय हुआ था जब सूरदास जी की काव्य कल्पना ब्रज भाषा का शृंगार कर चुकी थी। नन्दास जी का जब आविर्भाव हुआ उस समय सूरदास जी के द्वारा ब्रज भाषा का शृंगार हो चुका था। अत नंददास जी को अपनी रचनाओ के लिए पल्लवित और पुष्पित ब्रज भाषा प्राप्त हुई। यही कारण है कि भाषा के क्षेत्र मे नंददास जी सूरदास जी से भी आगे बढे हुए है। नंददास जी की ब्रज भाषा बडी मधुर और व्यंजक है। उसकी कोमल कांत पदावली चित्त को विमुग्ध कर लेती है। ब्रज भाषा के ठेठ शब्दो ने उचित लोकोक्तियो और मुहाविरो के साथ मिल कर उसमे अपूर्व सौंदर्य उत्पन्न कर दिया है। शब्दो का चयन और उनका स्थापन बडी कुशलता और मार्मिकता के साथ हुआ है। उनकी भाषा मे प्रत्येक शब्द नगीने की भाँति जडे और बिठाए हुए दृष्टिगोचर होते है। नंददास जी की भाषा के सम्बन्ध मे लोगो की यह कथनोक्ति सत्य ही है—"और सब गढिया, नंददास जडिया।"

नंददास जी सचमुच भाषा के जडिया थे। उन्होने सचमुच एक जडिया की भाँति ही अपनी भाषा की अँगूठी मे शब्दो के नगीने जडे है। उनकी भाषा मे कही भी शिथिलता दृष्टिगोचर नही होती। प्रवाह सर्वत्र एक-सा ही बहता हुआ दिखाई देता है। कही भी लम्बे चौडे समासो और संयुक्ताक्षरो का अवरोध नही मिलता। सर्वत्र ठेठ शब्दो की कोमल कांत पदावली ही मधुर वर्षा करती हुई दिखाई देती है।

नंददास जी की शैली बडी आकर्षक और प्रसाद गुण सपन्न है। वे अपनी शैली के एक ही कवि है। उनकी शैली के दो रूप किए जा सकते है—अलंकारिक और अनालंकारिक। उनकी अलंकारिक शैली चमत्कारपूर्ण है। उन्होने अपनी इस शैली को उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, और अनुप्रास इत्यादि अलंकारो के द्वारा चमत्कारिक बनाने का प्रयत्न किया। यह शैली बडी सरस

और प्रवाहपूर्ण है। उनकी दूसरी शैली साधारण कोटि की शैली है जो उनके कथात्मक वर्णनो मे मिलती है।

छंदो मे नन्ददास जी को 'रोला' सबसे अधिक प्रिय है। उनकी अधिकांश रचनाएँ रोला ही मे पाई जाती है। उनका रोला अधिक सुन्दर और पारिष्कृत है। उन्होने रोला के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा और कवित्त इत्यादि छंदो मे भी रचनाएँ की है। उन्होने पद भी लिखे है जिनमे छंदो और राग-रागिनियो का भी समावेश हुआ है।

———————

८ रहीम खानखाना

जन्म संवत् १६११
मृत्यु संवत् १६७४

परिचय—कविवर रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। इनका जन्म सवन् १६११ मे एक वैभव पूर्ण मुसलिम वश मे हुआ था। इनके पिता का नाम बैरम खाँ था। बैरम खाँ अकबर का अभिभावक था। पहले बैरम खाँ पर अकबर की बडी कृपा दृष्टि थी, किन्तु कुछ दिनो के पश्चात् जब बैरम खाँ विद्रोहियो मे सम्मिलित हो गया तब अकबर ने उसे बन्दी बना लिया, किन्तु दडित न करके हज करने के लिए उसे मक्का भेज दिया। पर मार्ग मे ही उसके शत्रु मुबारकखाँ ने उसे मार डाला।

रहीम का जन्म वैभव की ही गोद मे हुआ था। जीवन की उन्नति के लिए सभी साधन उपस्थित थे। यह एक प्रतिभाशाली बालक थे। सर्व प्रथम इन्होने अरबी और फारसी का अध्ययन किया। इसके पश्चात् हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। थोडे ही दिनो मे ये कई भाषाओ के पडित हो गए। इनकी विद्वत्ता और अध्ययन प्रियता को देखकर अकबर अधिक प्रसन्न हुआ। उसने इन्हे 'मिरजा खाँ' की उपाधि देकर सम्मानित किया और इनका विवाह भी करा दिया।

अकबर रहीम के गुणो पर मुग्ध था। अतः रहीम और अकबर की घनिष्ठता शनैः-शनैः अधिक बढ गई। इस घनिष्ठता के परिणामस्वरूप रहीम क्रमानुक्रम प्रधान सेनापति, मन्त्री और अकबर के दरबार के नवरत्न हो गए। अकबर रहीम का हृदय से सम्मान करता था। वह उनकी कार्यपटुता और बुद्धिमत्ता की अधिक प्रशंसा किया करता था। रहीम भी अपने दायित्व का पालन बडी बुद्धिमत्ता और तत्परता के साथ करते थे।

रहीम का हृदय बडा ही दयालु और कोमल था । वे विद्वानो, कवियो और कलाकारो का हृदय से सम्मान करते थे । केवल मौखिक सम्मान ही नही उन्हे धन से पुरस्कृत भी किया करते थे । कहा जाता है कि एक बार गग कवि ने, जो अकबर का दरबारी कवि था, रहीम की प्रशंसा मे एक छप्पय लिखा था । रहीम ने उस छप्पय पर प्रसन्न होकर उसे छत्तीस लाख रुपये की हुँडी भी दी थी । इसी प्रकार एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी के कहने पर इन्होने एक ब्राह्मण को पर्याप्त धन प्रदान किया था । तात्पर्य यह कि रहीम बडे उदार हृदय के थे । परोपकार की भावना प्रचुर रूप मे उनके हृदय मे विद्यमान थी । वे वर्ष मे एक बार, निश्चित तिथि पर, परोपकार मे ही अपने घर की सारी सम्पत्ति दान मे दे दिया करते थे ।

रहीम का हृदय अधिक विशाल था । वे जाति और सम्प्रदाय-गत भेदो से परे एक सच्चे मनुष्य थे । मुसलमान होने पर भी हिन्दू सस्कृति के प्रति उनके हृदय मे अपार प्रेम था । भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय मे गहरा प्रेम था । उनकी रचनाओ मे आज भी उनके हृदय का वह विशुद्ध प्रेम झलकता हुआ दिखाई देता है । महाराणा प्रताप के प्रति भी उनके हृदय मे अधिक श्रद्धा थी । महाराणा प्रताप के देश प्रेम और उनके स्वाभिमान की वे भूरि-भूरि प्रशसा किया करते थे । कहा जाता है कि एक बार रहीम के घर की बेगमे रणस्थल मे घिर गई थी और महाराणा प्रताप के सैनिको के हाथो मे पड गई थी । महाराणा प्रताप ने बडे आदर और सम्मान से उन बेगमो को रहीम के घर पहुँचा दिया था । रहीम महाराणा प्रताप की इस सज्जनता से उनके अधिक प्रशसक बन गए थे । कहा जाता है कि एक बार उन्होने महाराणा प्रताप की सहायता भी की थी ।

रहीम स्वय भी बडे विद्वान् और विचारक थे । उनकी दृष्टि बडी तीव्र थी । उनके अनुभवो मे महत्त्वपूर्ण ज्ञान समाविष्ट था । उन्होने जीवन को भली प्रकार देखा और समझा था । मानव जीवन सम्बन्धी उनके ज्ञानपूर्ण अनुभव आज भी उनके दोहो मे विद्यमान है । अन्तिम अवस्था मे रहीम को बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा । कहा जाता है कि अकबर की मृत्यु के पश्चात् जब जहाँगीर सम्राट हुआ तब जहाँगीर और रहीम का सम्बन्ध स्थिर न रह सका । जहाँगीर ने रहीम पर विद्रोह का अपराध लगाकर उनकी सारी सम्पत्ति

जब्त करली और रहीम कोडी-कौडी के मुहताज बन गए। पर इस दुःख और दैन्य मे भी रहीम ने उदारता का परित्याग नही किया। कहा जाता है कि एक बार रहीम ने गरीबी से आकुल होकर भाड झोकने की नौकरी करली थी। जब वे भाड झोक रहे थे तो एक दिन सयोगतः रीवॉ नरेश उधर से जा निकले। उन्होने रहीम को पहिचान लिया और उन्हे गरीबी से मुक्त करने के उद्देश्य से एक लाख रुपया प्रदान किया। पर रहीम ने उस रुपये को अपने पास न रखकर याचको मे बाँट दिया।

रहीम ने अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे बडी-बडी कठिनाइयाँ उठाई, पर उन्होने कभी अपनी आत्मा का हनन नही किया। उन्होने जहाँगीर के सामने कभी मस्तक नही झुकाया। अन्त मे विपत्तियो की गोद मे ही सवत् १६७४ के लगभग उनका स्वर्गवास होगया।

रचनाएँ—रहीम कई भाषाओ के विद्वान् थे। अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी पर उनका पूर्ण आधिपत्य था। वे इन भाषाओ मे सफलतापूर्वक रचना भी कर लिया करते थे। अकबर उनकी विद्वत्ता और रचना-चातुरी पर ही अधिक प्रसन्न था। उसने उन्हे अपनी सभा के नव-रत्नो मे भी स्थान दिया था। रहीम ने कई ग्रन्थो की रचना की है जिनमे कुछ अभी तक अप्राप्य है। रहीम के प्राप्त ग्रन्थो के नाम इस प्रकार है :—वाक़आत बाबरी का फारसी अनुवाद, दीवाने फारसी, खेट कौतुक जातकम्, बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पचाध्यायी, शृङ्गार सोरठा और रहीम सतसई। 'वाकआत बाबरी' तुर्की भाषा मे थी। रहीम ने उसका अनुवाद फारसी भाषा मे किया है। 'दीवाने फारसी' एक सग्रह है जिसमे रहीम की फारसी की कविताएँ संगृहीत है। 'खेट कौतुक जातकम्' एक ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ है जिसमे संस्कृत और फारसी के शब्दो का सम्मिश्रण है। 'बरवै नायिका भेद' मे नायिकाओ के भेद और उनके उदाहरण दिए गए है। 'मदनाष्टक' एक काव्य है जो खडी बोली मे लिखा गया है। 'रास पचाध्यायी' रहीम का अप्राप्य ग्रन्थ है। 'शृङ्गार सोरठा' का भी अभी तक पता नही चल सका है। 'रहीम सतसई' में रहीम के स्फुट दोहे संगृहीत है।

रचना की पृष्ठभूमि—रहीम एक अनुभवपूर्ण कलाकार थे। उनके हृदय

में दयालुता और उदारता का अंश अधिक था। वैभव की गोद में जन्म लेने पर भी उन्होंने मानव-जीवन को उदारता और सहानुभूति की ही दृष्टि से देखा था। उनके जीवन की घटनाओं और किंवदंतियों से ज्ञात होता है कि वे अपने और पराये में बहुत कम अन्तर समझते थे। वे सम्पूर्ण मानव को एक ही सूत्र में गुँथा हुआ-सा अनुभव करते थे। उनकी रचनाओं का मुख्य रूप से यही विषय भी है। उन्होंने अधिकतर रचनाएँ उन्हीं विषयों पर की हैं जिनकी दीवार उदारता, प्रेम और सौजन्य की ही नींव पर खड़ी होती है। उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, नीति, सत्संग और प्रेम इत्यादि हैं। श्रृङ्गार और हास परिहास भी इनकी रचनाओं का विषय है, पर इन्हें सबसे अधिक सफलता उन्हीं विषयों के चित्रण में प्राप्त हुई है जिनका प्रकृत रूप से इनके हृदय से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

काव्य-कला—रहीम एक कुशल कलाकार थे। उन्होंने मानव-जीवन के अन्तर में पैठकर उसकी वास्तविकताओं का अध्ययन किया था। उन्होंने मानव-जीवन का मथन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि उसका विकास पार्थिवता को लक्ष्य मानकर चलने में नहीं, वरन् भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और प्रेम से ही होगा। परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी कविता का श्रृङ्गार इन्हीं विषयों से किया है। रहीम के दोहे जो इन्हीं विषयों को लेकर लिखे गए हैं, बड़े मार्मिक हैं। रहीम ने अपने वर्ण्य-विषयों में घुसकर उन्हें देखने और समझने की चेष्टा की है। उन्होंने उनका हृदयंगम बड़ी तन्मयता के साथ किया है। जहाँ भी कहीं उन्होंने जिस विषय का चित्र खींचा है बड़ी अपूर्वता के साथ खींचा है। उनकी अभि-व्यक्ति में तीव्रता और कुशलता है। थोड़े ही शब्दों में बहुत कुछ ढाल देने की उनकी कवि-प्रकृति प्रशंसनीय है। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी कवि-प्रकृति का अपूर्व चमत्कार देखिए—

बिंदु में सिंधु समान, को कासों अचरज कहै।
हेरन हार हिरान, रहिमन आपुहि आप में।

इन थोड़े ही शब्दों में सारा ब्रह्मांड समाविष्ट है। कथन का ढंग कितना अपूर्व और भाव की कैसी उच्चता है। रहीम अपने भावों की इस उच्चता के

लिए हिन्दी काव्य-जगत मे अधिक प्रसिद्ध है। उनका एक-एक दोहा और उनके दोहे की एक-एक पक्ति मे भावो का कोष-सा भरा हुआ है।

रहीम के भक्ति, प्रेम और नीति सम्बन्धी दोहे अधिक प्रसिद्ध हैं। उनके भक्ति और प्रेम सम्बन्धी दोहो के आधार ब्रजचद है। उन्होने ब्रजचंद के ही प्रेम और भक्ति मे उल्लसित होकर अपने भक्ति-सबधी दोहे लिखे है। उनके भक्ति सम्बन्धी दोहो मे हृदय की तन्मयता और विह्वलता है। श्रीकृष्ण की महानता उनकी रग-रग मे समाविष्ट हे। देखिए वे किस प्रकार उस महानता का डका पीट रहे है—

"रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लवार।
जो पत राखन हार है, माखन चाखन हार॥"

रहीम श्रीकृष्ण के प्रेमी भी अनन्य है। श्रीकृष्ण का सौंदर्य उनके अतर के कोने-कोने मे घर कर गया है। कितनी व्याकुलता है उनमे उस सौंदर्य के निरखने की। निम्नांकित पक्तियो मे उनके हृदय की व्याकुलता झकृत हो उठी है—

"तू रहीम चित आपुनो, कीन्हो चतुर चकोर।
निसि वासर लाग्यो रहे, कृष्ण चंद्र की ओर॥

रहीम ने नीति संबंधी दोहे भी लिखे है। उनके नीति सबंधी दोहो मे उनके प्रगाढ अनुभव के चित्र है। उनका एक-एक दोहा जीवन का चित्र सामने प्रस्तुत करता है। उन्होने इन दोहो मे जीवन से सबन्ध रखने वाली बडी नपी-तुली और सयत बाते कही है। इन दोहो से यह पता लगता है कि उन्होने जीवन और जगत की परिस्थितियो का अध्ययन कितनी गहराई के साथ किया था। आज भी अनेक लोग जीवन के विभिन्न अवसरो पर उनके दोहो का दृष्टांत देकर उनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करते है।

रहीम ने शृङ्गरिक कविताएँ भी की है। उनकी शृङ्गार की कविताएँ उनके 'बरवै नायिका भेद' मे विशिष्ट रूप से मिलती है। 'बरवै नायिका भेद' मे विभिन्न नायिकाओं के सुन्दर और प्रभावपूर्ण उदाहरण दिए गए है। उदाहरण स्वरूप जो पंक्तियाँ उपस्थित की गई हैं, उनमे शृङ्गार रस की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

रहीम प्रत्यक्ष जीवन के कवि थे । अत. उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ प्रत्यक्ष जीवन से ही सम्बन्ध रखती है । यद्यपि उनकी दृष्टि सूक्ष्म थी और उन्होने अपनी दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयो का भेदन किया है पर वे मानव हृदय के उस अन्तर्द्वन्द से दूर ही रहे है जो लौकिक स्थितियो और दशाओ के कारण हृदय मे उठा करता है । यही कारण है कि रहीम की कविताओ मे जीवन-दशाओ से जनित अंतर्द्वन्द का अभाव है । कल्पना की उडान भी उनकी रचनाओ मे बहुत कम मिलती है ।

अलंकार और रसो की दृष्टि से भी रहीम की काव्य कला खरी उतरती है । रहीम अलंकारो के अच्छे ज्ञाता थे । उनके 'बरवै नायिका भेद' मे अलंकारो की सुन्दर ढग से संयोजना हुई है । उन्होने अपनी रचनाओ मे उदाहरण, उपमा, दृष्टांत और उत्प्रेक्षा इत्यादि अलंकारो से अधिक काम लिया है । रसो मे शृङ्गार रस उन्हे अधिक प्रिय था ।

भाषा और शैली—रहीम कई भाषाओ के पण्डित थे । वे संस्कृत और हिन्दी के साथ ही साथ फारसी और अरबी के भी अच्छे विद्वान थे, किन्तु उन्होने अपनी रचनाओ के लिए उन्ही भाषाओ को चुना है जो उन दिनो काव्य की भाषा के रूप मे अधिक प्रसिद्ध थी । वे भाषाएँ है—अवधी और ब्रज । रहीम की रचनाओ की भाषा का अध्ययन करने से पता लगता है कि रहीम का अवधी और ब्रज पर पूर्ण आधिपत्य था । रहीम ने दोनो भाषाओ का प्रयोग बडी निर्भीकता और सुन्दरता के साथ किया है । उन्होने अपनी भाषा मे ठेठ शब्दो का प्रयोग करके उसे अधिक सरस और मधुर बना दिया है ।

रहीम की बृज भाषा बडी सरस और मधुर है । उसमे शब्दो का प्रयोग भावो के ही अनुसार हुआ है । दोहो मे उनकी ब्रज भाषा का मधुर और सरस स्वरूप देखने को मिलता है । उनकी अवधी भाषा उनके बरवै नायिका भेद मे विकसित हुई है । 'नीति के दोहो' मे भी अवधी भाषा का सुन्दर स्वरूप देखने को मिलता है ।

रहीम की शैली बडी सरल, सुन्दर और सुबोध है । उन्होने अपने चुटीले शब्दों के द्वारा अपने भावो की अभिव्यक्ति बडी कुशलता के साथ की है ।

दोहा, सोरठा और बरवै उनके छंद है। दोहा और सोरठा ऐसे छोटे छंदों मे उन्होने बडे कौशल के साथ सुकुमार भावो की धारा प्रवाहित की है। उनके प्रवाह के ढंग मे हृदय का अंश अधिक और चमत्कार का बहुत अल्प है।

रहीम और कबीर, तुलसी तथा बिहारी—हिन्दी काव्य जगत मे रहीम अपने दोहो के लिए ही अत्यधिक प्रसिद्ध है। रहीम के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे कवि है जिन्होने दोहो के निर्माण मे सुख्याति प्राप्त की है। उन कवियो मे कबीर, तुलसी और बिहारी का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। यहाँ हम क्रम-क्रम से उनकी और रहीम की तुलना करेगे।

रहीम और कबीर दोनो ही का जन्म मुसलमान वंश मे हुआ था। दोनो ने ही दोहो का निर्माण किया है। दोनो की ही रचनाओ मे जीवन के लिए उपदेश है। दोनो को ही हिन्दू संस्कृति प्रिय है। इतना ही नही, दोनो ही हिन्दू-दृष्टिकोणो और विचारधाराओ से प्रभावित है। दोनो मे जहाँ यह सादृश्य है, वहाँ विषमता भी अधिक है। रहीम उपदेशक अवश्य है, पर उनकी रचनाओ मे कबीर की रचनाओ की भाँति व्यंग्य और फटकार नही मिलती। कबीर उपदेशक के साथ ही साथ सुधारक भी है। वे सुधार की भावना से प्रेरित होकर तीव्र आलोचना भी करते है। उनकी आलोचना मे व्यग्य और फटकार है। रहीम को आलोचना-प्रत्यालोचना से कोई सरोकार नही है। आलोचना-प्रत्यालोचना के कारण ही कबीर की रचनाओ मे शुष्कता की झकार है। उधर रहीम की रचनाएँ अधिक सरस और मधुर है। कबीर की अपेक्षा रहीम अधिक हृदय के सन्निकट है। रहीम ने हृदय और कबीर ने मस्तिष्क से अधिक काम लिया है।

रहीम और कबीर दोनो ही मुसलमान कवि है। रहीम ने अपनी वंश परम्परा को सुरक्षित रख करके ही हिन्दू विचारधारा को ग्रहण किया है, तथा उसके प्रति आस्था प्रदर्शित की है। पर कबीर ने दोनो मे किसी के अस्तित्व को सुरक्षित नही रक्खा है। उन्होने दोनो को मिटाकर एक मे मिलाने का प्रयत्न किया है। कबीर मे ज्ञान की भावना अधिक है। वे ब्रह्मवादी और पूरे दार्शनिक

है। उन्होने निर्गुणोपासना पर अधिक बल दिया और उसके प्रचार के लिए एक पंथ भी चलाया है। पर रहीम इन सबसे परे है।

रहीम और कबीर दोनो ही कवि है। कबीर की कविता में ज्ञान की प्रधानता है और रहीम की कविता मे भक्ति तथा प्रेम की। कबीर ने निर्गुणोपासना का राग गाया है, इस रूप में उनकी कविता रहस्यवादिनी हो गई है। रहीम की रचनाओ मे भगवान के सगुण रूप का ही अधिक वर्णन है। रहीम की रचनाओ मे जहाँ कही दार्शनिकता है वहाँ भी वे सगुणवादी ही दृष्टिगोचर होते है। कबीर अपनी कविताओ मे अपने सिद्धांतो के प्रचारक के रूप मे आविर्भूत हुए है, पर रहीम सर्वत्र एक कवि है—मधुर कवि है। उन्हाने सर्वत्र भावो की ही छटा बिखेरी है। भावो की दृष्टि से रहीम का स्थान कबीर से कही अधिक ऊँचा है। रहीम की रचनाओ मे भावो की जो मधुरता और सरसता मिलती है वह कबीर की रचनाओ मे नही मिलती। रहस्यवादी भावनाओ की दृष्टि से कबीर का स्थान रहीम से ऊँचा है। कबीर एक संत थे—दार्शनिक संत थे। उनकी जैसी दार्शनिक भावनाएँ रहीम की रचनाओ मे नही मिलती। रहीम संत नही थे। वे एक कवि और साहित्य-स्रष्टा थे। उनके जीवन के अनुरूप ही उनकी रचनाओ मे उनकी भावनाओ का विकास हुआ है।

भाषा और शैली के क्षेत्र मे कबीर और रहीम का कोई सादृश्य नही है। कबीर के पास अपनी कोई भाषा नही है। उनकी भाषा सधुक्कडी भाषा है जिसमे कई भाषाओ के शब्दो का सम्मिश्रण है। उनकी शैली भी बडी अटपटी और शुष्क है। इसके विपरीत रहीम की अपनी भाषा और अपनी शैली है जो बडी व्यवस्थित, सरस और मधुर है।

तुलसी और रहीम—दोनो ही समकालीन थे। दोनो का ही विश्वास सगुणोपासना मे था। दोनो का ही लक्ष्य आदर्श जीवन है। दोनो ने ही दोहे लिखे हैं पर दोनो मे ही अधिक अन्तर भी है। तुलसीदास जी एक महाकवि है। उनकी काव्य कला का दृष्टिकोण अधिक व्यापक और गभीर है। उनके दोहो मे भी उनकी यह गभीरता परिलक्षित होती है। रहीम के दोहे जहाँ बहुत सीधे-साधे और सरल है, वहाँ तुलसीदास जी के दोहो मे भावो की अधिक

गंभीरता है। उनकी अभिव्यक्ति का ढग भी रहीम की अपेक्षा अधिक व्यंजनात्मक और गंभीर है। उनकी अभिव्यक्ति के ढग मे रहीम से कही अधिक चातुरी और कुशलता है। रहीम और तुलसीदास जी की अभिव्यक्ति का कोई सादृश्य नही हो सकता। तुलसीदास जी की अभिव्यक्ति यदि कांचन है तो रहीम को काँच। तुलसी और रहीम की काव्य कल्पना मे काचन और कांच का सा ही अन्तर है।

भाव, भाषा और शैली प्रत्येक दृष्टि से तुलसीदास जी के दोहे रहीम के दोहो से अधिक महत्वपूर्ण है। भाषा तुलसी और रहीम की एक ही है। रहीम की भाँति तुलसीदास जी ने भी ब्रज और अवधी से हो अपनी रचनाओ का शृंगार किया है। तुलसी और रहीम—दोनो का ही भाषा पर आधिपत्य है, परन्तु तुलसीदास जी की भाषा रहीम की भाषा से अधिक व्यंजक और प्रसादपूर्ण है। मधुरता मे तुलसी और रहीम एक समान हो है पर भाषा का गम्भीर स्वरूप रहीम की अपेक्षा तुलसीदास मे अधिक है। रहीम की भाषा बहुत सीधी-साधी और सरल है। इसके प्रतिकूल तुलसीदास जी की भाषा मे पांडित्य और विद्वत्ता है।

रहीम की भाँति बिहारी ने भी दोहे लिखे हैं। रहीम और बिहारी दोनो के ही दोहो का एक ही क्षेत्र है। बिहारी ने भी नीति, 'भक्ति और शृंगार पर दोहो की रचना की है; पर दोनो की रचनाओ मे अधिक अन्तर है। बिहारी कल्पना के कवि है। उनकी रचनाओ मे कल्पना का विविध स्वरूप देखने को मिलता है। रहीम कल्पना से दूर—जीवन की वास्तविक अनुभूतियो का चित्रण करते है। यह सच है कि काव्य-जगत मे बिहारी की रचनाओ का अधिक मूल्य है पर व्यावहारिक जगत मे रहीम की रचनाएँ बिहारी की रचनाओ से अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है। बिहारी की रचनाएँ केवल साहित्य की वस्तु है, पर रहीम के दोहो का जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। बिहारी के दोहे जहाँ अल्पकाल के लिए हृदय मे भावो का चमत्कार उत्पन्न करते है, वहाँ रहीम के दोहे जीवन को आदर्श साँचे मे ढालते है और उसे भव्य बनने मे सहायता प्रदान करते है। यही कारण है कि बिहारी के दोहो से रहीम के दोहो का अधिक प्रचार भी है।

बिहारी कलात्मक कवि है। उनकी रचनाओ में कला का विकास हुआ है। रहीम ने केवल अपने जीवन के अनुभवो का चित्र अंकित किया है, जो उपदेशात्मक है। भाषा की दृष्टि से रहीम बिहारी से आगे दिखाई पडते है। रहीम ब्रज और अवधी दोनो के ही पडित है, पर बिहारी केवल ब्रज पर ही अपना आधिपत्य रखते है। बिहारी की ब्रज भाषा मे रहीम की अपेक्षा साहित्यिकता अधिक है। सौष्ठव और अभिव्यंजना भी बिहारी की भाषा मे अधिक पाई जाती है।